प्रथमवार, १०००

सन् १९३०

मूल्य ॥)

जीतमल लूणिया द्वारा
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर मे
मुद्रित ।

१)

भेजकर आप मण्डल के स्थाई ग्राहक बनें—

और

१—नरमेघ।

२—दुखी दुनिया

३—शैतान की लकड़ी

४—हमारे ज़माने की गुलामी

५—जब अंग्रेज आये

६—स्वाधीनता के सिद्धान्त

आदि क्रांतिकारी और सस्ती पुस्तकें

मण्डल से पौने मूल्य में लेकर पढ़ें!

दो शब्द

फ्रांस के प्रसिद्ध क्रांतिकारी लेखक श्री विक्टर ह्यूगो की चमत्कारपूर्ण लेखनी से लिखी गई यह पुस्तिका हम भरे हुए हृदय से पाठकों को अर्पण करते हैं।

फाँसी की सज़ा पाये हुए एक युवक के विचारों की यह लड़ी वे लोग पढ़ेंगे जिनके हाथ, न जाने कितने निरपराध नव युवकों को फाँसी देने के कारण, लाल हो गये हैं?

प्रकाशक

फाँसी !

फाँसी !

पाँच हफ्ते से केवल यही चिंता कर रहा हूँ। दिन रात मैं अकेला रहता हूँ। अकेला ही मृत्यु का ठंडा स्पर्श अनुभव कर रहा हूँ। मेरे गले को मानों किसी ने रस्सी से बाँध रक्खा है !

लेकिन हमेशा से मैं ऐसा नहीं था। अभी बहुत दिन न हुए होंगे मैं भी एक साधारण मनुष्य की भांति ही था। प्रति दिन, प्रति घण्टे, प्रति मुहूर्त मैं स्वाधीन रहता था। मेरा मन भी ऐसा ही स्वाधीन था। मेरा तरुण निर्मल मन एक नशे में विभोर रहता था। नियमहीन शृंखलाहीन, बाधाहीन जीवन की कल्पना मुझे उन्मत्त बना देती थी।

सुन्दरी किशोरियाँ, जय-पराजय, आनंद और उज्वल रंग-शालायें, संध्या की छाया में सुकुमारियों के बाहु-बंधन में स्वप्नमय परिक्रमण—ऐसे ही सुख के साथ मेरे दिन कटते थे। चिंता की गति थी स्वाधीन और स्वयं तो स्वाधीन था ही।

परन्तु आज ? आज मैं क़ैदी हूँ। सांकलों में जकड़ा हुआ, कैदख़ाने का रहनेवाला क़ैदी हूँ। मनके भीतर भी वैसाही अन्धकार है जैसा कि इस क़ैदख़ाने के अंदर। एक भीषण, निष्ठुर हत्या कलंक की कलिमा मुझको घेरे हुए है। अब और कोई चिंता मन में नहीं उठती। केवल एक चिंता दिन-रात मन में जाग रही है—फाँसी की रस्सी से मेरा प्राण दण्ड !

अशरीरी छाया की भांति यही चिंता मुझे घेरे हुए है। और किसी बात को सोचने का अवसर ही कहाँ ? मैं तो चाहता हूँ कि मैं भूल जाऊँ, परन्तु, हाय, सब व्यर्थ है। उसके कठिन स्पर्श से एक मिनट को निस्तार नहीं मिलता।

लाल आँखें निकाल कर मानो दिन-रात वह मेरी ही ओर देख रही है। मेरे चारो ओर न जाने कौन विषाद-रागिनी गाता रहता है और कभी-कभी किसी की तीव्र

हँसी बिजली की भाँति मेरी आँखों के सामने खिल उठती है। कारागृह की खिड़की के उधर,—ऍं······! वह किसकी आँख है? मौत की! प्रेत की भांति वह मेरे चारों ओर घूम रही है! हाथ में रस्सी···! नः, मैं पागल हो जाऊँगा।

अकस्मात नींद टूट गई—मालूम हुआ है किसी ने अभी-अभी मेरे मुख पर से अपनी दृष्टि हटाली। क्या यह स्वप्न है? जेलख़ाने के कठिन पत्थरों पर, दीप की क्षीण शिखा में, पहरेदारों की नीरव मूर्ति में, खिड़की के किनारे-किनारे—न जाने कौन घूमता रहता है। उसकी ज़बान पर केवल वही एक शब्द—फाँसी!

अगस्त का महीना है। निर्मल, स्निग्ध और सुन्दर प्रभात है। आज तीन दिन हुए मेरा विचार शुरू हुआ है। इन्हीं तीन दिन के अन्दर मेरा नाम चारों ओर सुविख्यात हो गया है। आलसियों का दल—जिन्हें काम से एक मिनट की फ़ुर्सत नहीं मिलती—वे आज मुझे देखने के लिए अदालत के आँगन में भीड़ किये खड़े हैं। मृत देह के चारों ओर जिस प्रकार गिद्ध लोलुप दृष्टि से डटे रहते हैं, उसी प्रकार यह भी मेरे लिए आज चंचल और अधीर हो रहे है।

पहरेवालों का यह वीर-दर्प और दर्शको की इस प्रकार की निरीह मूर्ति, ओह, यह मुझे असहनीय मालूम होता है।

पहली दो रात तो मुझे नींद ही नहीं आई। हृदय में

एक व्याकुल आर्तनाद का अनुभव होता रहा। यह गम्भीर आशंका काहे की थी? तीसरी रात को क्लान्त होकर निद्रा का मोह-स्पर्श पहले-पहल अनुभव किया। आवेशमयी निद्रा आह,—वह सब व्यथा को भुला देती है। पहरेदार की आवाज से नींद खुल गई। पैर में भारी जूता, हाथ में चाबियों का गुच्छा, ऐसा लगता था मानों यमदूत हो!

मैंने आँखों को मसलकर चारों ओर देखा! कारागार की मज़बूत काली दीवार! छत के नीचे हवादान में से आसमान का कुछ हिस्सा नजर आया। सूर्य का प्रकाश उस आसमान पर खिल रहा था। सचमुच मैं इस प्रकाश को अत्यन्त प्यार करता हूँ।

मैंने कहा, "वाह, कैसा सुन्दर दिन है?"

पहरेदार चुप रहा। मेरी बात का उत्तर देना शायद उसने ज़रूरी न समझा। फिर अकस्मात् न जाने क्या सोचकर उसने उत्तर दिया, "हाँ, बड़ा सुन्दर दिन है।" पत्थर की भाँति मैं निश्चल, निष्पंद हो गया चेतना लुप्त हो गई मैं उसी हवादान की ओर देखता रहा। फिर कहा—"वाह, बड़ा सुन्दर प्रभात है!"

उसने कहा,—"हाँ! लेकिन बाहर तुम्हारा सब इन्तज़ार कर रहे हैं।"

उसका यह उत्तर! मकड़ी की जाल की भाँति इस उत्तर ने मुझे फिर पुरानी चिन्ता के जाल में घेर लिया। इसी समय मेरी आँख के सामने खड़ा हो गया—वह निर्मम, हृदयहीन, रक्त का प्यासा विचारक, उसका अप्रसन्न गम्भीर मुख, और लोभी गवाहों का दल, काले गाउन में मण्डित वकीलगण, चित्र की भांति सज्जित पहरेदार तथा चपरासियान और साथ ही आवारा दर्शकों का समूह!

मेरी सारी देह में आग लग गई। बदन काँपने लगा। पैर भी टल रहा था। पहरेदार मुझे पकड़कर बाहर खींच लाया। बाहर की हवा से बहुत-कुछ शांति मिली और दुश्चिंता मिट गई। सिर के ऊपर विस्तृत नीला आकाश—ठण्डी धूप का मधुर स्पर्श, चारों ओर पक्षियों का कलरव, दूर पर पेड़ों की छाया—आहा! यह संसार इतना सुन्दर है, यह आज ही मालूम हुआ।

उसके बाद फिर विचार-गृह की बद्ध वायु। जीवन के बाद मृत्यु,—वह भी शायद ऐसी ही भीषण होगी। मुझे देखते ही चारों ओर कुछ शोर-सा होने लगा। काना-

फूँसी, कागजों का खसखस, जूतों की चरमराहट, ये सब मिलकर एक अजीब ही तरह की मिश्र-रागिणी की सृष्टि हो गई। मुझे देखने के लिए अब तक सब धीर भाव से प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरे आते ही उनको भी कुछ आराम मिला। कैसी निर्लज्ज हृदयहीनता ! एक आदमी की फाँसी का हुक्म सुनने के लिए इन पशुओं को कैसा कौतूहल !

चारों ओर शान्त निस्तब्ध ! आँधी आने के पहले प्रकृति जिस प्रकार शान्त हो जाती है, ठीक उसी भाति ! अभी आँधी आयगी ! एक भयानक आँधी आयगी ! मेरी हड्डियों को पीसकर नस-नस को चबाकर, जीवन को सहस्र खण्ड में विदीर्ण कर तब यह आँधी ठहरेगी। आज मेरे अपराध का दण्ड-विधान होगा।

दण्ड! कौन किसको दण्ड देगा ? कौन किसके अपराध का विचार करेगा ? मैं चुपचाप खड़ा हुआ इन्तजार कर रहा था। हृदय रह-रहकर काँप उठता था। क्या गम्भीर विराट् स्पन्दन था। उसका धक्-धक् शब्द बन्दूक के शब्द से भी शायद अधिक भयानक था।

मेरे मन में उस समय कोई भय नहीं था ! कमरे की खिड़की खुली हुई थी। मैं अकाश की ओर देख रहा था।

वहाँ असंख्य छोटे-छोटे पक्षी उड रहे थे। एक शांत और मधुर हवा माता की भाँति ही मेरे ललाट पर अपना शीतल हाथ फेर रही थी। जज की आँखें मानों नींद से भरी हुई थीं। उस ओर नजर पडते ही मैं सोचता था, "यह अभिनय क्यों?"

बाहर दूकानदार लोग हँस रहे थे। उन्हें मेरा खयाल ही नहीं। वे अपनी ही हँसी और बातों में मग्न हैं। हँसी और बातों से उन्हें कभी फुर्सत नहीं मिलती। कैसे निर्बोध हैं यह दूकानदार लोग! मूर्ख हैं।

चारों तरफ़ इतना आनंद! इतनी शोभा! इस समय मृत्यु की बात सोचना निष्ठुरता है—पाप है! यह स्निग्ध वायु, ऐसी दिव्य उज्वल प्रसन्न सूर्य-किरण। इस समय मृत्यु की चिंता—कैसी अशोभनीय बात! सूर्य-किरण की भाँति आशा की घटा कभी-कभी निराश हृदय में प्रकाश डाल रही थी—आहा! यदि आज मैं मुक्त हो जाऊँ।

मेरे वकील ने कहा, "उम्मीद ।"

कुछ हँस कर मैंने उत्तर दिया—"अच्छी बात है।"

वकील ने कहा, "मैंने सिद्ध कर दिया है कि घटना

अकस्मात हो गई—फाँसी तो हो ही नहीं सकती, हाँ, आजन्म कारावास—ख़ैर, देखें क्या होता है।"

मैंने कहा—"क्या, कारागार में आजन्म के लिए बन्दी नहीं, उससे तो मौत ही अच्छी है।"

हां, मौत भी अच्छी है। मैंने बाहर की ओर देखा। एक पक्षी डाल पर बैठ कर एक फल को ठुकरा रहा था। कितना आनन्दी जीव है वह! मैं यदि वैसा ही एक पक्षी होता! वैसा ही मुक्त और स्वाधीन होता!

जज उस समय अपनी राय पढ़ रहे थे। मेरा ध्यान उस ओर नहीं था। जीवन और मृत्यु की बात तो मैं उस समय भूल ही गया था। सहसा कान में आवाज़ आई—'फाँसी'। सिर में पसीना आ गया। आँखों के सामने काला पर्दा गिर पड़ा। मैं उस कठघरे से टिक कर खड़ा हो गया। शायद जज को कुछ दया आई उसने पूछा, "तुम्हें कुछ कहना है!"

कहने को तो बहुत कुछ था। परन्तु बात बढ़ाकर फ़ायदा ही क्या था? और ज़बान पर मानों ताले पड़ गये थे। दोनों हाथों से मैंने अपने मुँह को ढाँप लिया। लोग शोर करते हुए विचार-गृह के बाहर जा रहे थे। उनके पैरों

का शब्द सुनाई दे रहा था। ओफ़ अब उनको कुछ चैन मिली है। काम-काज, विलास-विश्राम सब छोड कर जो मेरे लिए इतनी दूर आने का कष्ट उठाते थे, मैंने उनको छुट्टी दे दी ! वे खुश होकर चले गये।

बहुत देर बाद मेरे मुँह से बात निकली। मैंने कहा—"हुजूर केवल इतनी दया करें कि फासी जल्दी हो जाय, बस और कुछ नहीं।"

सारे संसार पर मुझे क्रोध आ गया। वह सदा की भाँति ही हँसता रहेगा, आनन्द करता रहेगा। मैं उसको खाली कर जाऊँगा, परन्तु वह इसका अभाव अनुभव नहीं करेगा। हाय, ऐसी सुन्दर पृथ्वी, परन्तु कैसी निर्दय है ! किसी के लिए उसके हृदय में, स्नेह नहीं, ममता नहीं, मानों निस्पन्द और कठोर एक जड-पिण्ड है। यही संसार है, और इसी संसार में किसी प्रकार टिक रहने का नाम जीवन है। इससे मृत्यु, हाँ, वह क्या इससे अधिक कठोर है ?

पहरेदार मुझे बाहर ले आये। बाहर दर्शकों का दल उस समय भी मुझे देखने के लिए उन्मत्त था। अरे, इन सब हृदयहीन पशुओं के सिर पर बिजली नहीं गिरती ? कैसे प्रेत हैं ! पिशाच हैं !

बाहर आकर देखा कैसा परिवर्तन है। जब इधर से होकर विचार-गृह की ओर आया था, उस समय मैं भी और सबों की तरह जीवित था और अब? अब तो मानों मेरी मृत देह को कोई खींचे ले जा रहा है। अब मानों मैं इस संसार का कोई नहीं हूँ। पक्षियों का गान, सूर्य की किरणें—ये आज मेरे नहीं हैं। नदी का स्निग्ध जल, नीला आसमान, और सबों के लिए तो ठीक वैसा ही है, केवल मैं ही इनमें से चला गया हूँ। वे छोटे-छोटे फूल, पेड की वह छाया,—हाय, वे मेरे लिए नहीं हैं। इन सब पर आज मेरा कोई अधिकार नहीं है।

काले रंग की गाड़ी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मैं जब गाडी में चढ़ने लगा तो दूर पर कोई कह रहा था "उसको फाँसी का हुक्म हो गया।" मैंने उसकी ओर फिर कर देखा। एक व्यर्थ आक्रोश हृदय में धधक उठा।

गाडी चली! उसके भीतर के एक छोटे से छेद में से बाहर के संसार को देखता जा रहा था, सड़क पर आदमी चले जा रहे हैं—खासी चहल-पहल मची हुई है। उसमें कुछ भी फर्क नहीं आया है। मेरी मृत्यु से इनकी कोई हानि नहीं है, कोई सहानुभूति नहीं है। हायरे मनुष्य!

मृत्यु !

किंतु हानि भी क्या है ? मनुष्य हमेशा तो जीवित नहीं रहता। एक दिन तो मरेगा ही। वह दिन और वह क्षण ही उसको अज्ञात है। बस केवल इतना ही तो फ़र्क़ है। फिर क्यों मैं व्यर्थ ही घबड़ा रहा हूँ ?

आज से लेकर फाँसी के दिन तक कितने ही आदमी संसार छोड़ जायँगे ! मेरी फाँसी देखने के लिए जो लोग दिन गिन रहे हैं, उनमें से भी कितने ही चल बसेंगे। फिर मैं अपने जीवन पर इतनी ममता क्यों कर रहा हूँ ?

प्रकाश और हवा से न्यारा यह जेलखाना, कदर्य अहार, निःसंग जीवन, अपमान-पीड़ित हृदय, असभ्य और

निष्ठुर पहरेदार—हाय इस जीवन से लाभ ही क्या! संसार में मेरे लिए करुणा की एक बूँद आँसू भी नहीं है। मैं रिक्त हूँ, भिखारी हूँ! मेरे नाव की पतवार टूट गई। इस जीवन से क्या लाभ।

काले रंग की बन्द गाड़ी मुझे जेलखाने में ले आई।

पहले जब जेलखाने को देखता था तो यह भारी मकान कुछ ऐसा बुरा मालूम होता था। न जाने कितने बार उसी जेलखाने के सामनेवाले मैदान पर बैठ कर गीत गाये होंगे। मित्रों से गप्प लड़ाई होंगी। किशोर जीवन के उन्मत्त उल्लास, और आनन्द की स्फूर्ति के साथ चन्द्रालोक में बैठकर इसी मैदान मे मैं अपने भविष्य-जीवन के मंसूबे बाधता था। कितनी उद्दाम कल्पनायें करता था! देखने में राज-प्रासाद-सा वृहत् यह मकान, पास ही छोटी सी नदी बह रही है, मानों एक सुन्दर चित्र है। लेकिन आज इसको देखने से भी हृदय घृणा से संकुचित हो उठता है।

मेरा कमरा! उसमें खिड़की नहीं हैं, केवल लोहे की छड़ें है। बड़ा भारी लोहे का दरवाज़ा है, और चारों ओर पत्थर की दीवारें हैं। कहीं भी सौंदर्य का चिन्ह नहीं है। और स्नेह? वह तो यहाँ से कोसों दूर है।
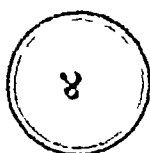
पत्थर की दीवार ने मानों मुझे अपने गाढ़ आलिंगन में बद्ध कर लिया। पहरेदार सतर्क दृष्टि से पहरा देने लगा। कोई भी कष्ट कोई भी असुविधा न हो, जिससे मेरा यह अमूल्य जीवन अपने आप कहीं नष्ट न हो जाय। बहुत सावधान थे वे—कहीं आत्महत्या न कर बैठूँ!

ऐसे ही आदर और सम्मान के साथ मुझे अभी छः-सात महीने जीवित रहना है। उसके बाद वे मेरी इस देह को फाँसी पर लटकाने के लिए, देवता की भेंट की भाँति ही, जल्लाद के हाथ सौंप देंगे।

पहले दो चार दिन,—सब का करुणा-सागर उथल उठा!—मौत की आग में डालने के पहले मानों मेरी देह पर

अमृत का सिंचन कर रहे हों !—परन्तु फिर वही पुराना बर-ताव !—कभी-कभी विद्रुम की स्निग्ध-धारा !

मेरी उम्र, शिक्षा और चेहरे ने इस समय कुछ मदद दी। पढ़ने-लिखने की आज्ञा मिल गई। सवेरे-शाम भग-वान की आराधना करने का हुक्म मिल गया। पहरेदारों की नज़रबन्दी में कुछ घूमने की भी इजाज़त दी गई। और दो-एक अभागे कैदियों से बातें करने का मौका भी मिला ! वे यहाँ पर भी आनन्द से हैं। मैंने उनका अपराध पूछा; किसी ने कहा,—ओह उनकी भाषा कैसी बेहूदी थी—चोरी, किसी ने कहा जाल—किसी ने कुछ, किसी ने कुछ ! वे इस तरह से कहने लगे, मानों वे काम बड़े बहादुरी के थे। उनकी धारणा कुछ अजीब ही है और सान्त्वना की रीति भी अद्भुत है।

फिर भी ये अपनी सहानुभूति मुझ पर प्रगट करते थे। ये ही सब थे मेरे एकमात्र साथी तथा मित्र ! एक वह समय था, जब मैं इनसे हृदय से घृणा करता था, और आज इनसे बात करते हुए भी शांति मिलती है। ये यदि न होते, तो मैं पागल हो जाता। परन्तु क्या ये सचमुच ही मनुष्य नाम के योग्य हैं !

आह, बेचारे सचमुच ही अभागे हैं। जो साधु हैं उनका स्तोत्र तो सब ही गाते हैं। जो धनी हैं, भाग्यवान हैं, उनके मुख से एक वाणी सुनने के लिए तो सब ही आतुर रहते हैं परन्तु जो इन अभागों को भाई कहकर छाती से लगा सकते हैं, न मालूम वे किस श्रेणी के मनुष्य हैं। उनका स्थान स्वर्ग के कितने ऊपर और कहाँ है? वे सचमुच ही उदार हैं।

और ये जो पहरेवाले हैं—ये भी सहानुभूति दिखाने आते थे। परन्तु उनकी सहानुभूति मानों परिहास था। दुर्दशा के पंजे में पड़ कर ही आज मैं मनुष्य-प्रकृति को समझने लगा हूँ। यह घृणित कैदियों का दल—इनकी सहानुभूति व्यथित दृष्टि—वह कितना पवित्र है!—ये मुझे घृणा नहीं करते!—मेरे अपराध का परिमाण निर्णय नहीं करते—आलसी दर्शकों की भाँति गिद्ध-दृष्टि से मेरी ओर नहीं ताकते।

सोच रहा हूँ कि यदि इन बातों को लिख जाऊँ तो बुरा क्या है? बातें करने के लिए जब कोई साथी नहीं मिलेगा तब ये कागज़-कलम ही तो मेरे प्यारे साथी बन सकते हैं! परन्तु लिखूँगा क्या? मेरी इन व्यर्थ चिंताओं के ढेर को कागज पर सजाने से फ़ायदा ही क्या है? चारों

ओर दीवारों की वेष्टनी में निर्जीव शृंखलित जीवन के सुख-दुख की माला मैं किसके लिए गूथूँ—मेरी यह माला कौन पहनेगा? मैं तो आज इस संसार का मनुष्य नहीं हूँ।—इस लोक और परलोक के बीचों-बीच एक स्थान पर खड़ा हूँ। मैं किसका आश्रय मांगूँ? मेरा अब कौन है?

फिर भी मैं अपनी व्यथाओ को वेदना की डोर में गूथूँगा। मैं अपने व्यथित भावों को लिख जाऊँगा। देखकर लोग घृणा करेंगे? करने दो। लोगों ने मुझे घृणा के सिवा और दिया ही क्या है? मेरे दुःख में उनके हृदय में सहानुभूति जगी ही कब थी? फिर मैं उनका भय क्यों करूँ? उनकी घृणा से मेरा अब क्या आता-जाता है?

दिल के अन्दर एक आँधी चल रही है! एक भीषण संग्राम हो रहा है! यह लड़ाई है कठिन और कठोर मौत के साथ!

जिसके जीवन के दिन बिलकुल गिन दिये गये हैं,—उसकी—अवस्था ओह! प्रकाश शीघ्र ही बुझा दिया जायगा! जीवन का प्रकाश भी बुझ जायगा। हाँ, शीघ्र ही!

पल-पल में जिस भीषण यन्त्रणा का सामना मैं कर रहा हूँ—तुच्छ फाँसी की रस्सी—उसकी यन्त्रणा क्या

इससे भी अधिक है ? वह तो एक विराट मुक्ति का पथ दिखायगी। इस बद्ध वायु और रुद्ध करुणा के ऊपर से विराट संकीर्णता का पत्थर तो एक वही हटा देगी। उसके बाद ?—आह, आशा और प्रकाश का अपूर्व राज्य—परन्तु यह सुन्दर संसार—ओह !

अच्छा ये लोग—जिन्होंने क़ानून बनाया है, क्या इन्होंने कभी यह भी सोचा है कि मनुष्य को फाँसी पर लटका देने का अधिकार मनुष्य को किसने दिया ? उसमें भी प्राण हैं, चेतना है, बुद्धि है, ज्ञान है ! एक पतली-सी रस्सी के सहारे पल भर में इन सब को नष्ट कर देना—साथ ही उसकी सब साध, उसकी सब आशा, उसका सारा प्रेम, विराट हृदय—सबको भस्मीभूत कर देना—यह कैसा नृशंस, कैसा अमानुषिक अनुष्ठान है ? परन्तु उनकी समझ में ये बातें नहीं। वे इन बातों को नहीं सोचते। उनकी आँखों के सामने नाचती है—केवल एक रस्सी और एक गर्दन—बस और कुछ नहीं। मूर्ख, प्रतिशोध को ही उन्होंने सर्वोच्च समझ रक्खा है !

इसीलिए तो मैं लिख रखूँगा ! अपनी इस वेदना को खिलाऊँगा ! सफ़ेद कागज़ों पर, इस कलम के सहारे ! मन

के भीतर जो द्वन्द्व चल रहा है, कोई उसे नहीं देखेगा, नहीं समझेगा? तुच्छ शरीर की वेदना! वह, दम घुट रहा है!

क्या कभी कोई इन कागज़ों को नहीं पढ़ेगा कि क्या-क्या कष्ट सहकर एक आदमी ने प्राण दिया है। ईश्वर जानता है। शायद इन्हें कोई भी न पढे। शायद किसी दिन आँधी की हवा में उड़कर ये कागज बिखर जायँगे। सड़कों के किनारे और मोरियों में पड़े रहेंगे या कोई पंसारी इनसे पुड़िया बाँधेगा। स्याही की शेष रेखा भी मेरे ही जीवन की शेष-साँस की भांति नीरव और निर्जन में ही विलुप्त होजायगी।

या शायद कभी किसी की दृष्टि इन कागज़ों पर पड़ेगी—तब ऐसा आन्दोलन शुरू होगा कि फाँसी की प्रथा ही उठ जायगी। कितने ही निर्दोषों को, कितने ही अभागों को दुर्दशा के हाथ से छुट्टी मिल जायगी! परन्तु उससे मेरा क्या लाभ होगा? मेरा जीवन तो उसके बहुत पहले ही फाँसी की वेदी पर चढ़ा दिया जायगा!

प्राण निकल जायगा! मृत्यु हो जायगी! सूर्य का यह प्रकाश, वसंत की यह स्निग्ध हवा, फल-फूलों से भरा हुआ यह विचित्र सँसार, रंगीला आसमान, सारा चराचर, हाय, मैं इन सबके बाहर चला जाऊँगा।

नहीं, मुझे अपनी रक्षा करनी ही होगी! अपने जीवन को बचाना होगा!

क्या किसी प्रकार भी इस मृत्यु की गति को मैं रोक नहीं सकता ? आह, इच्छा होती है कि कारागृह के इस कठिन दीवार पर अपना सर फोड़ लूँ ! निराशा और क्षोभ से फाँसी देनेवाले हाहाकार कर उठेंगे और तब मुझे बड़ा आनन्द आयगा !

अच्छा एक बार अपनी अवस्था पर शुरू से विचार कर लूँ । आज तीन दिन हुए मेरा विचार ख़तम हो गया है। वक़ील कहता है, अपील करना चाहिए ! अन्तिम चेष्टा !

आठ दिन तक दरख्वास्त इस कमरे से उस कमरे में घूमती रहेगी । पन्द्रह दिन बाद कोर्ट में पहुँचेगी उसके बाद नम्बर डलेगा, रजिस्ट्री होगी । फिर उस पर विचार होगा, अपील करने की इजाज़त भी मिले या नहीं संन्देह है ।

फिर पन्द्रह दिन तक इन्तज़ार करना होगा । अधीर भाव से, प्रतीक्षा करनी होगी । फिर वही विचार का अभिनय ! सरकारी वकील समझावेगा कि इस क़ैदी का अपराध यह है और वह है।अपील करना इसकी धृष्टता है, अपराध साबित हो गया है ।

इस तरह छः हफ्ते बीत जायेंगे ।

सोच रहा हूँ, एक 'उइल' (वसियतनामा) लिखूँ ! सोच

तो रहा हूँ, लेकिन व्यर्थ है। मुक़दमे के ख़र्च में मेरा सारा धन तबाह हो गया। जो कुछ रह भी गया है उसका वसियतनामा लिखाने से शायद कोर्ट और भी कुछ दण्ड ले लेगा!

संसार में मेरी एक तो बूढ़ी माता है, किशोरी स्त्री है, और एक छोटी कन्या है। तीन वर्ष की छोटी सी लड़की है वह! उसके लाल चपल ओठों पर हँसी तो हमेशा लगी ही रहती है। उज्वल और नीली आँखें, घुँघराले केशों के गुच्छे, दो-चार मुक्त केश उसके मुख और आँखों पर उड़ा करते हैं। मानों फूलों पर लताओं का झालर झूलता हो। मैंने उसको छः महीने हो गये नहीं देखा! ओह छः महीने हो गये!

मेरी मृत्यु से ससार में तीन नारी अनाथ हो जायँगी! पुत्रहीन, पतिहीन, पितृहीन—तीन अभागिनी! क़ानून के एक इशारे से तीनों का आश्रय टूट जायगा!

मुझको जो दण्ड मिल रहा है, यदि यह ठीक भी हो तो भी इन असहायाओं ने तो कोई अपराध नहीं किया। इनपर यह आघात क्यों? सरकार इसका क्या जवाब दे सकती है?

लोगों की घृणा इनके जीवन की जो क्षति करेगी, उसके लिए तो सरकार ने कोई व्यवस्था नहीं की। फिर भी इसी

का नाम विचार है। यही विचार की सुव्यवस्था है! मुझे हँसी आती है!

बूढ़ी माता के लिए मैं कातर नहीं हूँ। उनकी जीर्ण देह को विदीर्ण करने के लिए यह धक्का काफ़ी है।

स्त्री के लिए भी चिन्ता नहीं है। वह तो वैसे ही बिस्तर पर पड़ी हुई है। चिर-रुग्ण है। रोग से उसका जीवन-दीप बुझने ही को है।—इस संवाद से उसके जीवन की अन्तिम रश्मि ससार से विलीन हो जायगी। हाँ, यदि वह पागल न हो जाय।

सुनता हूँ पागलों का जीवन दीर्घ होता है। होने दो दीर्घ! फिर भी मृत्यु ही की भांति उसमें विराम है। शान्ति है।

परन्तु मेरी कन्या—वह शान्त शिशु, आदर की कन्या मेरी—हँसी, खेल और गीतों में जो सब भूली हुई है! आहा, अभागिनी नहीं जानती कि उसके सिर पर भी कोई आफ़त लटक रही है। वज्र की शिला की भांति उसका जीवन भी पिस जायगा, दलित हो जायगा! ओह, यही चिंता मेरी नस-नस को जला रही है।
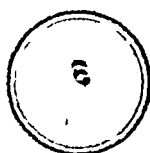
अभी रात बाकी है! आँखों में नींद नहीं! अंधकार-पूर्ण कारागार! एक शब्द भी कहीं सुनाई नहीं देता! अब समय कैसे बिताऊँ! समय बिताने का साधन यहाँ कहाँ से आये?

कमरे के एक कोने में लेम्प जल रहा था! उसी को लेकर दीवार के चारों तरफ देखने लगा। कहीं कुछ ज़रा-सा छेद नहीं है? बाहर की ठंडी हवा भीतर आने का कोई छोटा-सा रास्ता? नहीं।

दीवार में कितनी ही तरह की मूर्तियाँ अंकित हैं। कितनी ही भाषाओं में, कितनी ही बातें लिखी हुई हैं, कहीं खड़िया से तो कहीं कोयले से। हाय, मेरे ही जैसे अभागे मन की व्यथा को इस पत्थर की दीवार पर लिख गये हैं! उनके मर्म

का सारा बंधन टूट गया है! फिर भी इस पत्थर की दीवार ने सहानुभूति का एक शब्द भी उनसे नहीं कहा। एक क्षीण प्रतिध्वनि भी नहीं की! मूक, नीरव पाषाण इसी प्रकार निर्विकार खड़ा रहा! उनके व्याकुल कण्ठ का आर्तनाद पत्थर से शरीर पर लगकर चूर्ण हो गया!

मैं उनकी व्यथा की बातें दीवार पर देखने लगा। एक साधन मिल गया। उनकी वेदना की माला को मैं ही आज आँसू भर कर पहन लूं! मृत्यु की बात फिर भी थोड़ी देर को भूल जाऊंगा!

ठीक मेरी शय्या के पास दीवार पर—दो हृदयों को एक तीर से गूंथा है। यह एक चित्र है, शायद चित्रकार ने अपने हृदय के शोणित से ही उसपर लिख रक्खा था, 'कलेजे की मुहब्बत!" हाय, बेचारे ने यहाँ बैठकर दिन-रात केवल मुहब्बत की बात ही सोची होगी। पास ही कोयले से किसी ने लिखा है, "सम्राट् की जय हो।" कितनी आशा, आकांक्षा और आश्वासन इन अक्षरों में भरा है!

एक तरफ़ किसी ने लिखा है, "मैं साथिया को प्यार करता हूँ!" और एक ओर केवल "ए" अक्षर और केवल सफ़ेद खड़िया की एक रेखा! अंधकार में भी चाँदी के अक्षर

की भाँति ही वह चमक रहा है !—"ए" शायद उसकी प्रियतमा हो ! शायद उसका नाम "एमा" या "एडिथ" था ! हाय, इस एक अक्षर में एक व्यथा-कातर जीवन की कितनी बड़ी लंबी साँस मिली हुई है !

मैं बैठकर सोचने लगा । मेरे इस निःसंग और निर्जन मुहूर्त में पत्थर की दीवार मानो करुणा से जाग उठी । उसने अपनी पत्थर की छाती में इतनी मर्म-व्यथा, इतनी गोपन-वेदना छिपा रक्खी थी ! आज कहाँ है वह अभागों का दल ! कहाँ हैं उनकी साथिया, एमा, एडिथ ! किस गुलशन की आड़ में, किस खिड़की के पास बैठकर वे आसमान की ओर देख रही हैं ! उनकी ठंडी साँस उनकी विरह-व्यथा, उनका प्रिय-वियोग क्या समाप्त होगया ? कौन कहेगा !

लेम्प उठाकर मैं देखने लगा । दीवार के एक कोने पर, यह क्या ! यह तो फाँसी का चित्र है ! किसने यह चित्र बनाया ! किस मूर्ख ने इस प्रकार मृत्यु का आवाहन किया ! यह पृथ्वी, यह जीवन, क्या उसके लिए सचमुच ही असार हो गया था ! दो लकड़ी सीधी-सीधी खड़ी हैं । ऊपर दोनों के सिरे से एक और लकड़ी बँधी है । बीच में रस्सी झूल रही है—मैं ध्यान से उसे देखने लगा । सिर में चक्कर-सा आने लगा । लैंप

हाथ से गिर पड़ा। कमरा अँधेरा हो गया। ओह, कैसा भयानक और तीव्र अंधकार था ! अवसन्न होकर मैं जमीन पर बैठ गया !

फिर टटोल कर मैं अपनी शय्या पर आकर लेट गया। मन अस्थिर हो रहा था—इस पत्थर की दीवार पर लिखे हुए प्रत्येक चित्र और प्रत्येक शब्द को देखने की एक व्याकुल प्यास जग रही थी।

अंधकार में दीवार टटोलने लगा। मकड़ी के जाल में हाथ लिपट गया। जाल से हाथ को मुक्त कर फिर बिछौने पर बैठ गया। नींद आने लगी। मैं सो गया। जब आँखें खुलीं तो कमरे में कुछ अस्पष्ट प्रकाश आ रहा था। फिर खड़ा होकर दीवार को देखने लगा। दीवार पर एक जगह चार नाम लिखे हुए थे,—दाँतों १८१५, पूलें १८१८, जिन मार्टिन १८२१; कास्तेगँ १८१३। पढ़ने के साथ ही एक भीषण स्मृति मन में जाग उठी।

दाँतो ने भाई की हत्या की थी। पिशाच पूलें ने अपनी स्त्री की हत्या की थी, जिन मार्टिन ने बन्दूक की गोली से अपने पिता का सर उड़ा दिया था। और कास्तेगँ,—डाक्टर कास्तेगँ ने अपने मित्र को ज़हर दे दिया था !
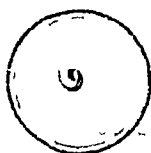
दिन का उज्ज्वल प्रकाश ! चारों ओर एक कोलाहल की ध्वनि ! बड़े-बड़े दरवाजों के खुलने और बंद होने का शब्द, चाबियों की खनखनाहट ! मानों यह कारागृह का उल्लास-संगीत हो ! सभी आनंद में मग्न है, सजीव हैं ! फिर मैं क्यों निरानंद और उदास हूं ?

दरवाजे के पास से एक पहरेदार जा रहा था। उसको बुलाकर मैंने पूछा "इतना शोर क्यों हो रहा है? इतना आनंद क्यों मनाया जा रहा है ?"

उसने उत्तर दिया—"नये क़ैदियों का एक दल आया है, उनके पैरों में बेडी पड़ेगी ! तुम देखोगे नहीं ?"

सन्यासी की भाँति यह वैचित्र्यहीन, अप्रसन्न, नि संग

जीवन से मैं उकता गया था। देखने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सका।

वहुत सावधानी के साथ पहरेदार मुझे एक कमरे में ले चला। वैठने के लिए वहाँ एक कुर्सी भी नहीं थी। हाँ, एक वड़ी खिड़की ज़रूर थी। खुली हुई खिड़की। गरादों के भीतर से आज कई दिन वाद आसमान का एक वड़ा हिस्सा नज़र आया। अहा 'आसमान कैसा सुन्दर है?'

पहरेदार ने कहा—"यहाँ से मजे में देखो राजा की भाँति आराम से देख पाओगे। कोई पास आकर भीड़ नहीं करेगा।"

कहकर दरवाज़े को वन्द करता हुआ वह वाहर चला गया। ताले में चावी लगाने का शब्द भी कान में आया। खिड़की से कारागार का वड़ा आँगन साफ़ दिखाई दे रहा था। आँगन के चारों ओर ऊँची दीवार थी। एक लम्वा दालान भी था जिसमें असंख्य सिर ही सिर नज़र आ रहे थे। सभी तमाशा देखने खड़े थे। आँख और मुख पर एक आग्रह का चिन्ह था—कौतूहल की एक विराट रेखा थी। नरक के प्रेत मानों आज मतवाले होकर नाच रहे हैं! सब की आँखें आँगन की ओर थीं।

बारह बजे। आँगन का फाटक खुला। असंख्य नई मूर्तियाँ भीतर आई। साथ ही एक बुरा कोलाहल होने लगा। मानो पल भर में एक नई जान कारागार में भर गई। अट्टहास और चीत्कार से सारा स्थान गूँजने लगा।

क़ैदियो की नत-दृष्टि और पहरेवालों का वीर-दर्प! यह सृष्टि ही अजीब थी!

क़ैदियो का नाम पुकारा जाने लगा। उनका अपराध क्या है, दण्ड का परिमाण क्या है, पूछा जाने लगा। जिनके दण्ड का परिमाण अधिक है, उनके नाम के साथ जय-ध्वनि होने लगी। दर्शकों के हृदय में कुछ अजीब ही आनन्द था। मानों क़ैदियों का दल एक विजयी सेना है, जो अभी युद्ध जय करके लौट रही है। इसीलिए तो यह आनन्द का आयोजन है और इसी कारण तो यह ताण्डव-नृत्य हो रहा है। दो-एक दर्शक तो आनन्द के मारे गुलाटें तक खाने लगे।

उसके बाद कैदियो के दल में आपस की जान-पहिचान है या नहीं, इसकी तलाश होने लगी। जिनमें जान-पहचान है उनको अलग कमरे में रखना चाहिए। कहीं उनको कुछ शांति न मिल जाय। दण्ड की कठोरता कहीं कम न हो जाय!

चारों ओर का विचित्र कोलाहल एक अखण्ड रागिनी की झंकार की सृष्टि कर रहा था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि यह किसी माया-लोक की संगीत-ध्वनि है। परन्तु अत्यंत ही अर्थहीन, लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन रागिनी थी वह। धीमी हवा मेरे मस्तक को स्पर्श कर रही थी। एक छोटी-सी आशा की किरण भी मेरे मन में न जाने क्यों जगने लगी। वह मीठी धूप, मुक्त हवा, उदार आकाश—वही तो जीवन है!—इन सब से दूर रहना—ओह, यह मृत्यु है!

अकस्मात् हवा की भाँति धूप हट गई। किसी ने मानों एक काला परदा उस पर डाल दिया। हलके बादल ने आकर पृथ्वी और धूप के बीच एक व्यवधान की सृष्टि की। स्वप्न के कुहक-जाल की भाँति ही एक छाया ने आकर धूप की गति रोक दी। सहसा पानी बरसने लगा। आँगन से दर्शकों का दल हट गया। केवल घोंसले के खोये हुए पक्षियों की भाँति ही क़ैदियों का दल असहाय-भाव से भीगने लगा। दो-एक शख़्स काँप रहे थे। परंतु इससे क्या? कारण वे क़ैदी हैं। आराम के साथ उनका कोई रिश्ता नहीं है।

जब पानी बन्द हो गया तब सब फिर साकलों में जकड़

दिये गये। पैरों में बेडियाँ डाली गईं। कोई रोने लगा और कोई जमीन पर लोट गया। एक आर्तनाद का स्वर! परंतु मारे कोड़ों के सब सीधे कर दिये गये। ओह, कैसे पिशाच हैं ये? निश्चल पत्थर की भाँति कठोर होकर मैं यह सब देखने लगा।

बादल हट गया। सूर्य का प्रकाश फिर निकल कर मुस्कराने लगा। मानों काले पर्दे को दोनों हाथों से हटाकर वह बाहर निकल आया हो। यह तमाशा देखने के लिए। भीतर से कैदियो का दल फिर निकल आया। कोई सीटी बजा रहा था और कोई गा रहा था।

अब भोजन की पारी है। भोजन की सामग्री आई। बड़ी-बड़ी बालटियाँ—उसमें फीका-सा कोरे जल का पदार्थ, स्वाद नहीं गंध नहीं! भुक्त-भोगी को ही उसका ज़ायका मालूम है।

फिर भी वे—बेचारे भूखे—तृप्ति के साथ उसे खाने के लिए व्यस्त हो उठे। उसीमें उनको कम आनन्द नहीं था।

आग्रह के साथ मैं सब देख रहा था। अपना ख्याल मैं भूल गया। चित्त में करुणा भर गई। आँखों में आँसू आ गये।

सहसा एक आवाज़ आई, "उठो-चलो।" क़ैदियों में

शोर-गुल मच गया। वे सब खडे हो गये। कतार बँध गई। सब चलने लगे

मेरी खिड़की के पास से ही वे जा रहे थे। मुझे देख-कर वे एक बार खडे हो गये। मेरी छाती धडक उठी। क्या मैं अजायब-घर का कोई जानवर हूँ, जो इस प्रकार वे मेरी ओर ताक रहे हैं।

एक ने कहा,—"फाँसी का आसामी देख लो। इसको फाँसी दी जायगी।" चारों ओर एक हँसी की धूम मच गई। असभ्य पशु!

मेरे सिर में चक्कर-सा आने लगा। मानों मैं शून्य मे लटक रहा हूँ!

इन्होंने कैसे जान लिया कि मुझे फाँसी का हुक्म मिल गया है?

"अच्छा, आखरी सलाम दोस्त।" निर्लज्ज की तरह वे चिल्ला उठे। एक ने कहा, "हमसे तो अच्छे ही हो, शीघ्र छुट्टी मिल जायगी। मुझे तो अभी चौदह वर्ष यहाँ भुगतना है।"

मेरी चेतना लुप्त-सी हो गई थी। हिलने तक की शक्ति

नहीं थी। आँखो के सामने नदी के स्रोत की भाँति कैदियों का दल चला गया।

सहसा होश आया। मैं सिहर उठा। सोचा, इस खिडकी के बाहर कितना प्रकाश, कितना आनन्द है—और भीतर वायु, प्रकाश और प्राण सब रुद्ध हैं। यदि ये सींखचे न रहतीं—सींखचों को पकड कर जी-जान से एक बार हिलाने की चेष्टा की। वह ज़रा भी न हिलीं। मुझे चोट आ गई। मैं क्रोध से गरज उठा। मेरा अन्तर विदीर्ण हो रहा था।

दूर से शोर-गुल की एक अस्पष्ट ध्वनि कान में आ रही थी। मैं वहाँ अवसन्न-भाव से बैठ गया। दूर का कोलाहल धीरे-धीरे क्षीण हो गया। मेरे जीवन पर मानों कोई एक काला पर्दा धीरे-धीरे डाल रहा था। मैं मूर्छित हो कर गिर पड़ा।
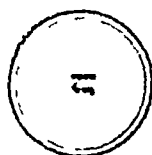
आँखें जब खोलीं उस समय रात हो गई थी। मैं निवार की खाट पर सो रहा था। बत्ती जल रही थी। कमरा बहुत बडा था और खाटों की कतारें लगी हुईं थीं। मैं समझ गया कि मैं अस्पताल में हूं। चारों ओर बिल्कुल निस्तब्ध शांति !

कुछ देर तक तो मुझे कुछ याद ही नहीं आया। जाग तो रहा था परंतु चेतना नहीं थी।

पहले जेलखाने की इन अस्पतालों को मैं कितनी घृणा करता था, परन्तु आज मैं वह मनुष्य नहीं रहा। एक मैली सी चादर ! रोगों की एक तीव्र दुर्गन्ध ! चारों ओर परिपूर्ण अशान्ति ! एक मूर्तिमान विभीषिका ! मैंने आँखें

बन्द कर ली—निद्रा के शीतल स्पर्श से सब यंत्रणाओं को भूल गया।

अचानक नींद खुल गई। देखा, दिन निकल आया है। बाहर से शोर-गुल की आवाज सुनाई पड़ रही थी। मेरी खाट बिलकुल खिड़की के पास लगी हुई थी। खिडकी से मैंने बाहर की ओर देखा, क़ैदी लोग काम पर जाने की तैयारी कर रहे हैं। उनकी बेड़ियों का झनाझन शब्द अच्छी तरह सुनाई दे रहा है। सुना, सवेरे ही एक व्यक्ति को फाँसी लग चुकी है—उत्सुक दर्शकों का दल वही देख कर हल्ला करता हुआ लौट रहा था। निर्लज्जों को हल्ला करने में शर्म नहीं मालूम होती। एक आदमी की जान ही चली गई और ये आनन्द से चिल्ला रहे हैं। इनके सिर पर गिरने के लिए आकाश में क्या वज्र का अभाव हो गया है?
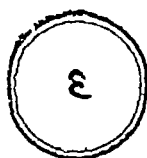
मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। मेरा भाग्य ही ऐसा बुरा है। मुझे अस्पताल छोड़ना पड़ा। फिर कारागृह का वह बन्द कमरा, मेरी ही लंबी साँस की गरम हवा से भरा हुआ, चारों ओर निराशा और विषाद का निरानंद और विमर्ष भाव—इसी कमरे में जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिननी पड़ेंगी।

कोई भी बीमारी नहीं! यह तरुण, स्वस्थ और सबल देह—रोग के ग्रास से वह जीर्ण क्यों होने लगा? नसों के भीतर से गरम खून तेज़ी से चल रहा है, ऐसी बुद्धि, ऐसा स्वास्थ्य—मन फिर क्यों पल-पल में विचलित हो रहा है? क्यों वह जला सा रहा है?

अस्पताल से लौटने के बाद केवल एक बात कभी-कभी सोचने लगता हूँ। वहाँ से भाग जाने का अच्छा मौक़ा था, वह मौका मैंने क्यों मूर्ख की भाँति छोड दिया ? क्या अच्छा और आसान मौका था वह ! रात के निस्तब्ध अन्धकार में चुपचाप निकल सकने पर—क्या ही मुक्त स्वाधीनता के उदार राज्य में मैं पहुँच जाता ! सिर के भीतर नसें धिक-धिक करने लगीं। आँखों के आगे चारों ओर हरे गोले तैरने लगे।

यदि भाग जाता ? अहा ! उसमें इनका क्या नुकसान था। अपील से यदि छूट जाऊँ ? परन्तु उसकी संभावना कहाँ है ? गवाहों ने सौगंध खाई है—विचार काफ़ी तौर से हो गया है। अब अपील से क्या फल होगा ? कुछ नहीं। हाय, सब व्यर्थ है, फाँसी की रस्सी ही मेरे भाग्य में बदी है। अपील की क्षीण आशा ? वह अत्यन्त कमज़ोर है।

यदि आज क्षमा मिल जाय ! क्षमा ? परन्तु क्यों मिलेगी ? ये असंख्य अभागे—बोझा ढोकर, बेड़ी खींचकर, जेल में सड़ रहे हैं—सड़ा हुआ भोजन खाकर पेट की ज्वाला को बुझा रहे हैं। इनका परिवार, कुटुंब, मित्र कहाँ हैं ? इनके घरकी दशा क्या है ? ये इस यंत्रणा को समान

भाव से भोगते रहेंगे और मुझे क्षमा मिल जायगी, मैं आनंद के साथ घर लौट जाऊंगा! क्यों, मुझे किस कारण वे क्षमा करेंगे? देश के लोग इस अन्यायपूर्ण क्षमा को देखकर क्या कहेंगे! नहीं क्षमा नहीं! फाँसी ही मेरी मुक्ति का एक एकमात्र उपाय है!

हाँ, यदि भाग जाता! हरे-हरे खेतों पर से, छोटी-छोटी पहाड़ियों पर-से, नदी-वन अतिक्रम कर किसी अनजान देश की ओर चलता रहता! किसी की ओर नहीं देखता, किसी के दरवाज़े पर नहीं ठहरता! कहीं भी भीख नहीं माँगता! पेड के फलों से क्षुधा की निवृत्ति, नदी के जल से तृष्णा का निवारण, पक्षियों के गीत में विश्राम, तरु-तल पर निद्रा! लोकालय में? नहीं—यदि कोई संदेह करे? यदि पकड़े? मैं भागता थोड़े ही!—उससे तो उनका शक बढ़ जाता! धीरे-धीरे निश्चिंत-भाव से कितने ही शहर कस्बे गाँव पार कर जाता। एक गुप्त-वेश कहीं से जुटा लेता। मेरे गाँव के पास वह जो झाड़ी है, वहीं जाकर पहले विश्राम करता। उस झाड़ी में मैंने कितनी ही रातें जगकर बिताई हैं, कितने ही दिन वहाँ खेलकर काटे हैं! बचपन में हमजोलियों के साथ वहाँ वह आँखमिचौनी का खेल! हंसी, दिल्लगी, मज़ाक!

अहा, कैसे सुंदर दिन थे वे ! उस अतीत का एक पल भी कहीं आज मुझे मिल जाय !

हाँ, फिर जब अँधेरा हो जाता तब सड़क पर निकलता, भिन्सेन जाता ! नहीं भिन्सेन कैसे जा सकता था ? रास्ते में बहुत बड़ी नदी है, पार होना कठिन है। तो आपजिन जाता ! नहीं, शायद जर्मनी जाना ही ठीक होता—वहाँ से हेभर, हेभर से इंग्लैण्ड ! परंतु यदि उस समय पुलिस पकड लेती पासपोर्ट माँगती तो ? बडी आफ़त होती ?

हाय, अभागा हूँ, मैं यह क्या सोच रहा हूँ ? स्वप्न-भ्रान्त जीव, तीन फुट मोटी इस दीवार को लाँघना सम्भव कहाँ ? हाय-हाय, कोई उपाय नहीं है—नहीं है ! मृत्यु ही अब मेरी साथिन बनेगी !

उस बचपन की याद आ रही है जब मै बालक था। इसी जेल में फाँसी देखने के लिए आता था। ओफ़्, कितनी भीड़ जमती थी ! और आज ?

लेम्प बुझने वाला था। अभी सवेरा हो जायगा। गिर्जे की बडी घडी में टन् टन् कर छै बज गये।

पहरेदार ने आकर टोपी खोलकर सलाम किया। नम्र-कण्ठ से पूछा, मेरी कुछ खाने की इच्छा है या नहीं। आश्चर्य, ऐसा विनय-नम्र व्यवहार! मेरा सारा अंग काँप उठा! तो क्या आज ही?

हाँ आज। काराध्यक्ष स्वयं आये थे। मुझे क्या चाहिए, इसी की जाँच करने। और भी उन्होंने पूछा मेरे प्रति कोई बुरा व्यवहार तो नहीं करता? मेरे सम्मान की हानि तो कोई नहीं करता है न? मेरा स्वास्थ्य कैसा है। रात को नींद तो अच्छी आती होगी? हर-एक बात के साथ महाशय कह कर वह संबोधन कर रहे थे। कोई भी संदेह न रहा। आज,

तब आज ही, वह स्मरणीय दिन है! जिस दिन की बात एक पल के लिए भी मैं नहीं भूला था!

काराध्यक्ष अथवा उनके कर्मचारीगण, कोई त्रुटि कैसे कर सकता है! मेरे प्रति ख़राब व्यवहार कैसे कर सकता है, हँसी की बात है! वे केवल कर्तव्य की पूर्ति कर रहे हैं! सतर्क भाव से मेरी निगरानी कर रहे हैं! मेरे प्रति किसी ने कोई बुरा आचरण नहीं किया। मुझे इसी से संतोष करना चाहिए।

और यह काराध्यक्ष—यह भला आदमी कैसी मीठी-मीठी बातें करता है, मधुर दृष्टि से देखता है,—हा.-हाः-हाः, दीर्घ वलिष्ट बाहु! कारागृह का यही एक प्रतिविम्ब है! मालूम होता है यही जीवित पत्थर का एक जेलखाना है! यहाँ की सब वस्तुयें जेलख़ाने का ही रूपांतर हैं! पहरेदार, लोहे की गरादें, पत्थर की दीवार—सब! चाबी और ताले तक जीवित मालूम होते हैं—सब मिलकर मुझे पहरा दे रहे हैं! और यह कारागृह—निष्ठुर कारागार, आधा पत्थर और आधा मानव देह विशिष्ट—मुझको मानों इसने जकड़कर बाँध रक्खा है! लोहे का हृदय लेकर मुझसे आलिंगन करने आ रहा है। दरिद्र अभागा हूँ मैं! मुझसे यह दिल्लगी क्यों करते हैं?

चित्त शांत है। कुछ भी फ़िक्र नहीं है। द्विधा भी नहीं है। जेल के अध्यक्ष आकर देख गये हैं। उनसे मिलने के बाद मैं अच्छा ही हूँ। पहले मन में जो थोड़ी-बहुत आशा थी भी, वह मैंने अब छोड़ दी है, यह केवल उन्हीं के कहने से।

साढ़े छै या पौने सात बजे होंगे। अकस्मात् मेरे कमरे का दरवाजा खुल गया। बाल सफेद हो गये हैं, ऐसे एक आदमी ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। आते ही उन्होंने अपना भारी काला कोट खोल डाला और बैठ गये। कपड़ों से मैं समझा कि यह महाशय आचार्य हैं।

मेरे सामने ही वह बैठे थे, सिर हिलाकर उन्होंने आकाश

की ओर देखा। इस दृष्टि का अर्थ मैं समझ गया। उन्होंने कहा,–"क्या तुम प्रस्तुत हो गये हो बच्चे?"

शांत स्वर से मैंने उत्तर दिया,–"नहीं, प्रस्तुत तो ठीक नहीं हूँ,–परंतु हाँ, अभी उठने को तैयार हूँ।"

मेरी दृष्टि क्षीण हो रही थी। ललाट पर पसीना आ रहा था। प्रस्तुत—एकदम प्रस्तुत,—परन्तु किसलिए? मेरी छाती काँप उठी! प्राणों के भीतर एक विकट शब्द ध्वनित होने लगा!

आचार्य बहुत-कुछ कह थे—उनके ओठ हिल रहे थे, हाथ-पैर और गर्दन भी साथ ही साथ हिल रहे थे। वे क्या कह रहे थे यह मुझे नहीं मालूम, कारण कोई भी बात मेरे कान के भीतर तक पहुँचती नहीं थी।

फिर दरवाज़ा खुला। अब जेल के अध्यक्ष स्वयम् उपस्थित हुए। शरीर पर एक लंबा काला कोट, हाथ में कागज़ों का पुलिन्दा—सूरत पर एक दुःख का भाव लाने की चेष्टा वह कर रहे थे।

कारावध्यक्ष ने कहा,–"अदालत से खबर आई है।" एक बिजली मेरे सारे शरीर में से दौड़ गई।

मैंने पूछा,–"क्या? अदालत मेरा सर अभी मांगती

है ? वह तो मेरे लिए गौरव की बात है। मेरे इस सर पर सरकारी वकील को कुछ विशेष लोभ है—यह मैं खूब जानता हूँ। हाँ, मैं बिलकुल प्रस्तुत हूँ।" वह पुलिन्दा खोल कर कागज़ों को पढने लगे,—वही अदालत की जटिल भाषा—विकट और दीर्घ शब्दों की झंकार—जिनका अर्थ कहीं मुश्किल से कोई समझ सकता है। आध घण्टे तक कागजों को खस खस करने के बाद उसका अर्थ समझ में यह आया—मेरी अपील मंजूर नहीं हुई है। अच्छी बात है!

कागज़ों पर से आँखों को न उठा कर ही उन्होंने कहा—"प्लेदी प्रीग्ह में फाँसी होगी। साढे सात बजे हम लोग कौंसियारजारी जेल की ओर रवाना होंगे। कृपया आप भी हमारे साथ चलें।"

कुछ देर तक मैं चुप रहा, किसो की बात का उत्तर नहीं दिया, जेल के अध्यक्ष और आचार्य में खूब बातें हो रही थीं। देश की मामूली चर्चा हो रही थी, वे उसी चर्चा में तन्मय थे।

ठीक इसी समय दरवाज़ा खोल कर चार हथियारबन्द पहरेदार कमरे में घुस आये। देखने में वे यमदूत से मालूम होते थे। सलाम करके उन्होंने कहा, "समय हो गया है।"

मैंने कहा—"मैं तैयार हूँ–चलो"। उन्होंने कहा—'आध घण्टे के भीतर ही रवाना होना पड़ेगा।" कहकर वे कमरे से बाहर चले गये। एक बार अंतिम चेष्टा! भगवान, सचमुच ही क्या कोई आशा नहीं है?

भाग जाऊँ, हाँ, जैसे भी हो भागना पड़ेगा! दरवाजा, खिड़की, छत सब को पार कर जैसे भी हो भागना पड़ेगा! यदि देह के माँस को भी रख जाना पड़े वह भी स्वीकार है। केवल हड्डियों को लेकर ही भागूंगा!

यदि कहीं से कोई यंत्र या अस्त्र मिल जाय! राक्षस की भाँति बल से मैं सबका उच्छेद कर जैसे भी हो—परंतु मेरे हाथ में एक कील भी तो नहीं है—अभागा हूँ—आशा नहीं है!

———

मैं कॉंसियारजारी-जेल में आ गया ! अपनी इच्छा से नहीं, सरकारी हुक्म से—सरकारी दूतों की कड़ी निगरानी में ! पथ की बात भी सुन लो !

साढ़े सात बजे पहरेदार ने आकर मुझे अभिवादन करते हुए कहा—"मेरे साथ आइए महाशय !"

अदब और कायदे में कोई भी त्रुटि नहीं थी ! मैं उठकर उसके पीछे हो लिया ! सिर भारी हो रहा था—पैर ऐसे दुर्बल थे कि चलना मुश्किल हो रहा था, फिर भी चला ! बाहर से एक बार मैंने अपने निर्जन कमरे की ओर देखा ! इतने दिनों का आश्रय ! कुछ ममता हो रही थी ! आज इस कमरे को मैं सूना कर चला ! परंतु अधिक देर

के लिए नहीं--संध्या तक जरूर कोई नया मेहमान इस कमरे में आ जायगा ! वाहरे विधाता का विधान !

आंगन के सामने आचार्य बैठे थे। वह अपना भोजन शेष करने की फिक्र में थे। जेल के अध्यक्ष ने आकर मेरे साथ हाथ मिलाया। चार पहरेदारों की देख-भाल में मैं चला।

अस्पताल में एक आदमी ने सलाम किया। उस समय मैं खुले हुए आंगन के बीचोंबीच खड़ा था। साँस लेने में कुछ आराम मिल रहा था। परंतु कबतक ?

बाहर गाड़ी खडी थी—वही गाड़ी जिसमें बैठकर मैं यहाँ आया था। लम्बी गाड़ी—भीतर लोहे की रेलिंग से उसके दो हिस्से बना दिये गये थे, मालूम हो रहा था कि किसी ने लोहे से मकड़ी का जाला बुना हो! दो अलग अलग दरवाज़े भी थे—एक पीछे की ओर दूसरा सामने की ओर। गाडी के भीतर अंधेरा तो था ही, साथ ही धूल और कूडा भी भरा हुआ था। इससे तो मेरा वह जेलखाने का कमरा लाख दर्जे अच्छा था ! इस कब्र में जीते-जी घुसने के पहले एक बार अच्छी तरह चारों ओर देख लिया। इस मुक्त आकाश की स्मृति को लेकर अंधेरे सागर में कूद

पढ़ूँगा ! दरवाजे के सामने क़तार बाँधकर दर्शक लोग खड़े थे। टपाटप पानी पड़ रहा था। मालूम हो रहा था कि यह पानी दिनभर बन्द न होगा। रास्ता और आंगन कीचड से लथपथ हो रहा था!—चारों ओर कुछ उदासी-सी नजर आती थी।

गाडी पर चढ़ा। सामने के कमरे में हथियारबन्द पहरे वालों का दल और आचार्य—पीछे के कमरे में अकेला मैं।

गाड़ी के साथ ही चार हथियारबन्द घुडसवार! चारों ओर इस प्रकार हथियारबन्द सिपाही—मानों मैं कोई बादशाह था!

गाड़ी चली। पानी से सडक के पत्थर निकल आये थे। घोडे की नाल से खटाखट शब्द हो रहा था।

पीछे एक आवाज के साथ जेल का फाटक बन्द हो गया—वह शब्द भी मैंने सुना। मैं मानो कुछ तन्द्रा से आच्छन्न था। कोई डर अथवा चिंता मुझे स्पर्श न करती थी। मानों मुझे जीते-जी कब्र में गाड़ दिया हो—कुछ ऐसा ही भाव था। घोड़े के गले में घण्टा बँधा हुआ था—पहिये और घोड़े की नाल से मिलकर गाड़ी का एक विचित्र ही शब्द कान में आ रहा था। मानों आँधी की पीठ पर सवार

होकर मैं कहीं जा रहा होऊँ—किसी निरुद्देश देश की ओर, किसी स्वप्नलोक की ओर, शायद किसी देवकन्या की खोज में !

गाड़ी के भीतर दरवाजे में जो छेद था, उसीमें से मैं बाहर की ओर देख रहा था। एक जगह बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"बूढे आदमियों के लिए अस्पताल"—इस संसार में आदमियों को बूढ़ा होने की भी फुरसत मिलती है ? आश्चर्य की बात है। मेरी यह तरुण अवस्था ! खैर, जाने दो उन बातों को—

गाड़ी घूमी। दूर पर नोटरडम का गुंबज दीख रहा है। पेरिस के कोहरे को भेदकर गगनस्पर्शी गुम्बज उठा हुआ है। मैंने सोचा,—"वाह ऊपर से चारों ओर एक बार देख लेता तो अच्छा था।"

आचार्य ने बातचीत शुरू की। वह खूब बकते जा रहे थे। रोकने वाला तो कोई था ही नहीं। आचार्य की आवाज़ से घोड़ों की नालों की आवाज में कुछ अधिक मीठापन था। मुझे उनकी ओर ध्यान देने की फुर्सत नहीं थी। रास्ते पर खूब कोलाहल हो रहा था।

सब शब्द कान में आ रहे थे। परन्तु स्वतंत्र भाव से

नहीं—एक अजीब मिश्र रागिनी के स्वर में, अथवा मानों झरने से झर-झर कल-कल शब्द से पानी गिर रहा हो !

अचानक सुना, आचार्य कह रहे हैं—"क्या बुरी गाड़ी है यह, एक बात भी सुनाई नहीं देती ।"

उनका कहना सच था—बिल्कुल ठीक था ।

आचार्य ने कहा—"तुम्हें शायद मेरी बात सुनाई नहीं देती होगी ।—हाँ, क्या कह रहा था ? आज पेरिस में क्यों इतना शोर मचा हुआ है, मालूम है ?"

मैं चौंक उठा, क्या कोई नया संवाद भी है ? शायद मेरी फाँसी का हुक्म सुनकर ही यहाँ हल्ला मचा होगा ।

आचार्य कहने लगे—"संध्या के पहले अख़बार पढ़ने की फ़ुर्सत भी नहीं मिलेगी । संध्या के समय मैं रोज़ अखबार पढ़ा करता हूँ, उससे दिन के ढलने तक का सब समाचार मिल जाता है, एक भी बाकी नहीं छूटता ।"

अब तक पहरेदारों का मुखिया चुप बैठा था, वह बोल उठा—"ऐसी मजेदार खबर, और आपको अभी तक मालूम ही नहीं है ?"

मैंने कहा—"मुझे तो शायद मालूम है ।"

उसने कहा—"आपको मालूम है ? ताज्जुब की बात है। कहिए तो सही ?"

"क्या तुम सुनने को बहुत व्याकुल हो ?"

उसने कहा—"हाँ अवश्य ही। राज्य के मामले में हर एक को बोलने का अधिकार है—चाहे वह कोई भी हो। आप कैदी हैं तो क्या हुआ ? मैं राष्ट्रीय सेना में था; बचपन में मैं उसका कप्तान था। वह दिन भी बड़े प्यारे थे।"

मैंने टोककर कहा—"नहीं महाशय, मैंने कोई और ही बात सोची थी।"

उसने कहा—"और ही बात ? क्या कहते हैं आप ? आपको कैसे मालूम हुआ ? किसने कहा आपको ? कहिए तो सही क्या खबर है, सुनूँ ज़रा।"

आचार्य ने पूछा—"तुमने क्या सोचा था ?"

मैंने कहा—"शाम के बाद मुझे सोचने के लिए कुछ न मिलेगा, बस इतना ही मैं सोच रहा था।"

आचार्य ने कहा—"चच् चच् ! बडे दुःख की बात है, तुम्हें अत्यन्त चिन्ता हो रही है। परंतु जी को ढाढस दो। मन को मजबूत करो।"

मुखिया पहरेदार बोला—"आप बहुत रंजीदा मालूम होते हैं ? कास्तेगाँ को जब हम यहाँ लाये थे तो वह सारे रास्ते हँसाता-हँसाता आया था।"

फिर वह अपने अनुभव की बातें करने लगा, पापामा को भी वही लाया था। सारा रास्ता वह चुरुट पीता आया था और रतले के वे विद्रोही लड़के ऐसे चिल्लाते-हँसते आये थे कि कुछ न पूछिए।

आचार्य ने कहा—"कष्ट और दुःख पाना तो पागलपन है; बुद्धि का दोष है। परन्तु महाशय आप बहुत ही विमर्ष मालूम होते हैं। आपकी इतनी कम उम्र !"

स्वर को यथासाध्य तीव्र कर मैंने कहा—"कम उम्र ! क्या कहते हैं आप ? आपसे मेरी उम्र अधिक है। मेरी उम्र प्रति घण्टा १० वर्ष बढ रही है।"

आचार्य ने हँसकर कहा—"क्यों मजाक करते हो, मेरी उम्र तुम्हारे परदादा के बराबर होगी।"

मैंने गंभीर भाव से कहा—"नहीं मजाक आप करते होंगे, मैं ठीक कह रहा हूँ।"

आचार्य ने हुलास की डिबिया निकाली। उसको खोलते-खोलते मेरी ओर देखकर कहने लगे,—"नाराज न होना भाई—"

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, नाराज होने की कौन सी बात है।"

इसी समय एक धक्का लगा और उनकी हुलास की डिबिया उलटकर गिर पड़ी—सब हुलास गिर गया। घबड़ा-कर खाली डिबिया को उठाते हुए आचार्यजी बोले—"राम राम! सब हुलास गिर, गया अब क्या करूँ?"

मैंने कहा—"क्या करेंगे, दु:ख भी क्या है? आराम-सुख सब तुच्छ है। मेरी ओर देखने में आपको शान्ति मिलेगी।"

आचार्यजी गरज उठे—"रहने दो अपने मज़ाक़ को, बड़े तुच्छ करने वाले आये!—तुम्हे दु:ख भी क्या है? मैं ठहरा बूढ़ा एक आदमी—बिना हुलास के इतना रस्ता कटना—हाय हाय!"

देखा न आचार्य की बात। मेरे कष्ट से उनका कष्ट अधिक है, कारण उनका हुलास गिर पडा है। कैसे स्वार्थान्ध हैं ये पुरोहितगण।

हुलास के दुःख से आचार्य महाशय चुप और गुम हो-कर बैठ गये। उनकी बकवास बन्द हो गई। गाड़ी के भीतर फिर एक सन्नाटा छा गया। घर-घर घर-घर करती हुई गाड़ी उसी गति से चलती रही।

आखिर गाडी शहर के भीतर, चुंगीघर के सामने,

आकर ठहर गई। वहाँ से कर्मचारीगण आकर गाड़ी के भीतर परीक्षा कर गये। यदि हम भेड़ या बकरे होते तो यहाँ कुछ दक्षिणा देनी पड़ती, परन्तु अफसोस कि हम मनुष्य थे, बिना महसूल दिये ही छुटकारा पा गये।

उसके बाद गाड़ी कई छोटी-बड़ी टेढ़ी-मेढी सडकों पर से घूमती हुई उस चौड़ी सड़क पर आ पहुँची, जो सीधी काँसियारजारी को ले जाती थी। सडकों पर लोग अवाक् होकर गाडी की ओर देख रहे थे। अख़बार बेचनेवाले इधर-उधर दौड रहे थे।

साढ़े आठ बजे हम काँसियारजारी आ पहुँचे। सामने ही विराट् जेलखाना। उसका बड़ा भारी लोहे का फाटक। देखकर मेरा खून ठंडा हो गया। गाड़ी ठहर गई। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि शायद मेरे हृदय की क्रिया भी ठहर गई।

किसी प्रकार साहस को इकट्ठा कर मैं उतरने को तैयार हुआ। दरवाज़ा भी उसी समय खुल गया। गाढी के अंधेरे कमरे में से मैं कूदकर नीचे उतर पड़ा। दो पहरे-दारों ने आकर दोनों तरफ़ से मेरे हाथ पकड़ लिये। दोनों ओर क़तार बाँधकर सेना खड़ी थी। बीच में मैं चला। बाहर हमें देखने के लिए एक खासी भीड जमा थी।

———

उसी सेना की श्रेणी के बीच चलते हुए मुझे कुछ आराम का अनुभव होने लगा मानों मैं स्वाधीन हूँ, कैदी नहीं हूँ। परन्तु जब सीढियों को पार करता हुआ उन अँधेरे कमरों की ओर जा पहुँचा, उस समय फिर विरक्ति और अवसाद ने आकर मुझे आच्छन्न कर लिया।

पहरेदार बराबर साथ आ रहे थे। आचार्य दो घण्टे बाद फिर मिलने की प्रतिज्ञा कर कहीं चले गये। उनको और भी न जाने क्या-क्या काम था।

हम अध्यक्ष के कमरे में आये। उनके हाथ में पहरेदार ने मुझे सौंप दिया। मुझे कुछ हँसी आई—मेरे कैसे प्रिय-जन को इसने मुझे सौंप दिया है।

अध्यक्ष महाशय उस समय कुछ व्यस्त थे। पहरेदार

से उन्होंने कहा—"जरा सब्र करो, मैं अभी समझ लेता हूँ।"

ठीक ही तो है,—जमा-खर्च के खाते का हिसाब न मिलाकर वह एक मनुष्य को खाते में कैसे जमा कर सकते हैं? उस समय वह किसी और अभागे क़ैदी की भाग्य-लिपि की ओर झुके हुए थे। पहरेदार ने कहा—"अच्छा तब तक मैं भी अपने कागजों को सम्हाल लूँ।"

कागज़ों का एक पुलिन्दा निकालकर पहरेदार उसी में तन्मय हो गया। मैं एक कोने में खड़ा रहा। लोहे की मोटी छड़ों के भीतर से आसमान नज़र आ रहा था—धूप देखकर मालूम हो रहा था मानो आकाश के शरीर को किसी ने रंग दिया हो! उज्ज्वल नीला आकाश—अहा!

ऊपर की ओर मैं एक दृष्टि से देख रहा था। मैं सोच रहा था, यहाँ मैं खड़ा हूँ, और मेरी स्त्री-कन्या? वे भी इसी आकाश के नीचे हैं। न मालूम इस जीवन में उनके साथ कभी साक्षात् होगा या नहीं।

पहरेदार मुझे पास की एक छोटी-सी कोठरी में ले आया—उसमें बिलकुल अन्धकार छा रहा था। उसमें दो खिड़कियाँ थीं, जो लोहे की जाली से घिरी हुई थीं। खिड़की के पास आकर मैं बैठ गया।

कब तक बैठ रहा, यह ठीक याद नहीं। अकस्मात् अट्टहास के शब्द से, मैंने पीछे की ओर देखा। यह क्या एक और आदमी! उम्र उसकी कोई पचास से ज्यादा ही होगी—पीठ झुक रही थी, बाल पक गये थे, फिर भी यह खूब मजबूत मालूम हो रहा था, आँख और मुख पर एक विकट भाव था, उसकी ओर देखने से कुछ भय भी मालूम हुआ।

मैंने पहले उसे देखा नहीं था, परन्तु वह इसी कमरे में बैठा हुआ था।

आश्चर्य! यही क्या मृत्यु है—आज ऐसा भेष बनाकर मुझे तैयार करने के लिए आई है?

उसने कहा, "अजी किस चिंता में निमग्न हो? मैं कब से बैठा हूँ और मेरी ओर देखा तक नहीं! क्या नाम है तुम्हारा?"

मैंने उत्तर नहीं दिया। केवल उसकी ओर आँखें फाड़-कर देखने लगा।

उसने कहा—'मेरी ओर क्या देख रहे हो? मैं एक लगेज हूँ—स्टेशन की मुहर मेरे ऊपर लग चुकी है, अब केवल रेल आने तक की देर है।"

वह कुछ रसिक मालूम पड़ा। मैंने पूछा—"इसका अर्थ ?"

बड़ी जोर से कहकहा मारकर वह हँस पड़ा। मैं डर गया। वह कहने लगा—"क्या इसका अर्थ भी नहीं समझे ? मामूली बात है ! छ: हफ्ते बाद मुझे इस दुनिया के पार भेज दिया जायगा। इसीलिए अभी से मेरे ऊपर चालान की मुहर लग चुकी है। मतलब यह है कि छ: घंटे बाद तुम्हारी जो दशा होगी, छ: हफ्ते बाद मेरी भी वही दशा होगी। अब तो समझ गये न—मैं तुम्हारा कितना बड़ा मित्र हूँ।"

मेरी नसें सिकुड़ने लगीं।

वह कहता गया—"चुपचाप सोचने से कोई फल नहीं होगा मित्र ! इससे सुनो, मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँ ! वक्त भी कट जायगा—और, कहानी है भी मजेदार।"

उसने कहना शुरू किया—"चोरी-डकैती तो हमारा पीढ़ी-दरपीढ़ी से पेशा हो रहा है। परन्तु फाँसी केवल मैं ही चढ़ाया जा रहा हूँ, तकदीर की बात है !

"छ: वर्ष की अवस्था जब मेरी हुई तब माँ-बाप मुझे छोड़कर उस लोक के यात्री बन गये, जिसका रहस्य अभी

तक किसी को नहीं मालूम। जेब काटकर और बेवकूफों को और भी बेवकूफ बनाकर मैं मजे से अपना पेट भरने लगा। आखिर मेरा पुश्तैनी पेशा जो ठहरा।

"जाड़े के मौसिम में जब चारों ओर बरफ़ से रास्ते और गलियाँ भर जाती हैं, उस बरफ पर से भी मैं नंगे पर चला करता था। स्टेशन, होटल, ट्रेन हर जगह मैं जेब काटता फिरता था।

"पन्द्रह वर्ष की अवस्था में मैं पहले-पहल पकड़ा गया। पीठ पर कई कोड़े पड़े और दो-चार दिन की सज़ा हो गई। जब मैं जेल से लौटा तो मेरी कद्र बढ़ गई और मैं दल का मुखिया बन गया।

"उसके बाद बड़े-बड़े कामों में हाथ डालने लगा। शहर के मशहूर जौहरी की दूकान पर मय अपने दल के उपस्थित हुआ सारी दूकान लूट ली, दो दरबानों को जान से मार डाला। हिम्मत भी बढ़ने लगी। लेकिन, विभीषणों का अभाव कहीं नहीं है। दल के एक विश्वासघाती ने हम लोगों को पकड़वा दिया। सात वर्ष तक जेलखाने की हवा खानी पड़ी। फिर बाहर निकला। कुछ विशेष प्रमाण नहीं था, नहीं तो कभी जेल के बाहर पैर रखने की नौबत ही

नहीं आती। उस अभागे स्वार्थी विश्वासघाती पर बड़ा क्रोध आया।

"जब मुकदमा खत्म हुआ, उस समय, वह अदालत के बाहर खड़ा था। मैं उसकी ओर एक तीव्र-दृष्टि डालता गया। उस दृष्टि में आग बरस रही थी, वह उसकी हड्डी-हड्डी में घुस गई। डर से उसका मुँह सूख गया। खैर, सात वर्ष बाद मैं फिर बाहर निकला।

"दो दिन इधर-उधर घूमते बीत गये। एक दाना तक पेट में नहीं पड़ा। प्रतिहिंसा के लिए भारी आग जलने लगी थी।

"रात को खिड़की तोड़कर एक होटल में घुसा। वहाँ खूब पेट भरकर खाया। चुपचाप—किसीको कुछ मालूम तक न हुआ!

"सात-आठ दिन बाद दल के दो चार लोगों से मुलाकात हुई। उन्होंने चोरी छोड़ दी थी। कोई नौकरी करने लगा था, और कोई खेती। सब कायर थे।

"नया दल बनाया। चुन-चुनकर जवान और छबीले आदमी भर्ती किये।

"इसके बाद खूब समारोह से काम चलने लगा। रोज़

लूट, रोज़ जीत, रोज़ नये-नये मज़े। आनन्द का फ़व्वारा छूटने लगा!—किंतु, फिर भाग्य पलटा। दल के लोग पकड़े जाने लगे। दल टूट गया। काम बन्द हो गया। क्रोध से मैं उन्मत्त हो गया।

"उसके बाद, एक दिन वह पुराना विश्वासघाती सड़क पर मिल गया। मुझे देखकर वह काँपने लगा। मैंने उसके बालों को अपनी मुट्ठी में पकड़ लिया। कहा—'क्यों? आज?'

"वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा—'माफ़ करो सरदार!'

" मैंने कहा, ' विश्वासघाती को मै माफ़ नहीं कर सकता।'

"उसने कहा, 'मैं तुम्हारा ग़ुलाम हूँ।'

'विश्वासघाती ग़ुलाम को मैं ऐसी ही शिक्षा देता हूँ।' कहकर मैंने उसकी पीठ पर एक जोर की लात मारी। वह पाँच हाथ दूर जा गिरा। मुँह से ख़ून उगलने लगा। मैने कहा—'उठ, चल!'

"उसे मैं ले चला। मैं तब—ओह, एक राक्षस की तरह हो गया था। मेरा ऐसा सुन्दर गिरोह, पुराने साथियों का दल—केवल इसी विभीषण के कारण टूट गया! शैतान!

"मैंने जेब से छुरी निकाली। उसके दोनों कान काट दिये। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। मेरे सिर में आग-सी जल रही थी। मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

"उसके बाद पुलिस में जाकर उसने इजहार दिया एक दिन अस्पताल में वह मर गया। मैं भी पकड़ा गया। मेरी फाँसी का हुक्म हो गया है। ठीक ही तो हुआ है। क्या कहते हो? एक तरह से मैंने ही उसकी जान ली है। खैर, फाँसी के लिए मुझे चिन्ता नहीं है। चोरी करते-करते जी भी कुछ ऊब गया था। मामूली चोरी में मुझे कभी आनन्द नहीं मिलता। काफी अक्ल खर्च करता था। वैसे अक्लमंद और हिम्मतवाले साथी भी अब कहाँ मिलते हैं? इसीलिए अब जीवन में कोई विशेष आकर्षण नहीं है। मरने के पहले विश्वासघाती को अपने हाथ से दण्ड दे दिया, यह भी कुछ कम आनन्द की बात नहीं है। और भी दो-एक चोरी के क़िस्से सुनाता हूँ। समझ जाओगे कि मैं कितना अक्लमंद था मेरी ऐसी अक्ल को फाँसी की रस्सी में झूलना पड़ेगा, यह एक अफ़सोस की बात जरूर है। पर, ख़ैर, देश का दुर्भाग्य!'

उसकी बातें सुनकर मुझे रोमांच हो रहा था। इस पिशाच का, इस राक्षस का साथ न जाने कब छूटेगा?

उसने कहा—"तुम बड़े सीधे आदमी मालूम होते हो। राम-राम, फाँसी पर जा रहे हो। अब भी तुम्हे अफ़सोस हो रहा है। इसीमें तो मजा है, यह नहीं मालूम? मौज करो, आनंद करो, लोग जानेगे कि हाँ, फाँसी पर भी यह आदमी डरता नहीं है। मृत्यु इसके लिए खेल है। देखकर सब अवाक् और स्तंभित हो जायँगे। बहादुर कहेंगे। मुझे देखो न? कैसे मज़े में हूँ। आखिर अफ़सोस करने से कुछ नतीजा तो हासिल होगा ही नहीं!"

मैने कहा—"आप सचमुच महाशय हैं!"

क़हक़हा मारकर वह फिर हँस उठा। उस हँसी के विकट शब्द से सारा कमरा गूँज उठा। उसने कहा—"ओहो 'महाशय'—आप लोग सफ़ेदपोश हैं, 'महाशय' हैं, यह तो मुझे याद ही नहीं था। लेकिन महाशयो को फाँसी दी जाती है—यह बडे अचम्भे की बात है!"

उसकी बातों में काफ़ी व्यंग था। मैं चुप रहा। वह कहने लगा—"क्या आपको केवल आचार्य के आने तक का विलम्ब है। अच्छा, आप तो जमींदार हैं। फाँसी पर चढ़ने जा रहे हैं। अपना यह सुंदर कोट क्यो व्यर्थ ही ख़राब

करेंगे? मुझे दे दीजिए! कुछ जाड़ा भी कटेगा, और नहीं तो बेच बाचकर चुरुट मँगाने की तदबीर करूँगा।"

मैंने कोट खोल दिया! ठंड से शरीर काँपने लगा। उसने कहा—"आप अमीर आदमी हैं। यह जाड़ा आप बरदाश्त नहीं कर सकेंगे। रहने दीजिए, आप पहन लीजिए, अपने कोट को।"

उसने कोट को मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने कहा—"नहीं, मैं बरदाश्त कर लूँगा, कोट आप ले लीजिए।"

खिड़की के पास आकर वह कोट को अच्छी तरह देखने लगा—कुछ देर तक उलट-पलटकर उसे देखता रहा, फिर बोला, "यह तो बिलकुल नया मालूम होता है। खैर, ठीक है, आपकी कृपा से छः हफ्ते तक चुरुट और तम्बाकू का अभाव नहीं होगा। धन्यवाद, महाशय! कुछ बुरा न मानना, हम ग़रीब ठहरे। बातें करना तो आता ही नहीं।"

इसी समय अध्यक्ष भीतर आये! मुझको एक पहरेदार के ज़िम्मे कर दिया और उसको दो पहरेदारों के हाथ में देकर बाहर चले गये।

हम लोग भी बाहर आये। बाहर आकर उसने कहा—

'भूलना नहीं महाशय, यहाँ यही आखरी मुलाक़ात है। फिर छ हफ्ते बाद मिलेंगे! वहाँ आप मेरा इंतज़ार करना।"

उसकी बातों को सुनकर मेरा हृदय काँप उठा। क्या कहता है यह? पागल है या बेवकूफ़? कौन है यह?

वह था बड़ा मज़े का आदमी। मेरा कोट लेकर साफ़ चलता बना।

क्या मैंने दान कर दिया ?—नहीं, ठीक दान तो नहीं किया। मैंने सोचा, वह मजाक़ कर रहा होगा, फिर मुरव्वत के खयाल से वापस न ले सका।

पक्का और पुराना चोर है ! पैरों से जिसको दल सकता हूँ, वह मुझे मित्र के नाम से संबोधन कर गया।

मेरा हृदय क्रोध से क्षुब्ध हो गया। मृत्यु मेरे सिरहाने खड़ी है। अभी निर्दयी की भाँति वह मुझे पीस डालेगी। अभी तक धनी-सम्प्रदाय का अहंकार मेरी हड्डियों में भरा है ! मूर्ख हूँ मैं ! बेवकूफ़ हूँ !

फाँसी की डोर धनी और निर्धन का विचार न करेगी।

जिस राज्य में जा रहा हूँ, वहाँ धनी और निर्धन का विचार न होगा।

जो डोर उसके गले में पड़ेगी, वही डोर मुझे भी पार पहुँचायगी! मुक्ति देगी! हाँ, वह मेरा मित्र ही तो है! परम मित्र है!

वायुहीन बन्द एक छोटे-से कमरे में, फिर मैं बन्दी हूँ। बन्दी हो गया हूँ, इसलिए क्या प्रकाश और हवा पर मेरा कोई अधिकार नहीं है? विचार के नाम पर मनुष्य, मनुष्य के प्रति यह अन्याय क्यों करता है? यदि सज़ा देना ही उनका उद्देश्य हो, तो इससे भी कम ख़र्च में और भी सरल उपाय का तो अभाव नहीं था। वही पुराने युग में जो होता था—एक थैली के भीतर बन्द कर नदी में डुबा देने से ही तो बहुत शीघ्र काम तमाम हो जाता। इतनी ज़बर्दस्त तैयारी और कड़े पहरे की बहुत-सी मिहनत बच जाती।

कमरे में बिस्तर नहीं था। मैंने चौकीदार को बुला-कर बिस्तर लाने के लिए कहा। वह अवाक् होकर मेरी

ओर देखता रहा—मानों आस्मान से गिरा है। शायद उसे आश्चर्य हो रहा था कि जो शख़्स छः घण्टे बाद फाँसी पर चढ़ा दिया जायगा, उसे बिस्तर की क्या ज़रूरत ?

जो हो, उसी समय कमरे में जेल के अध्यक्ष ने बिस्तर लगवा दिया। वह बड़े दयालु हैं। मरते समय कम से कम उनकी दया की बात तो सोचता हुआ मरूँगा। कमरे के दरवाजे पर एक पहरेदार खड़ा रहा, जिससे बिस्तर की चादर से मैं अपनी फाँसी अपने आप न लगा लूँ—सरकार के ज़ल्लाद को कहीं धोखा न दे बैठूँ !

ठीक दस बजे हैं।

मुझे मेरी की याद आ रही है। अभागिनी कन्या मेरी ! छ: घण्टे बाद मैं कहाँ रहूँगा और यह पृथ्वी कहाँ रहेगी ? अस्पताल की मेज पर मेरा प्राणहीन शरीर पड़ा रहेगा। देह की चीरा-फाड़ी कर फिर वे साँस लेंगे। मेरी बोटी-बोटी काटी जायगी। हाय, मेरी, तुम्हारे पिता के जीवन का यह परिणाम है !

फिर भी आज इनके व्यवहार से यह नहीं कहा जा सकता कि ये मुझसे घृणा करते हैं। करुणा से सबका मन भरा हुआ है। मेरी सेवा में कुछ भी त्रुटि नहीं हो रही है। फिर भी ये मुझे जीने नहीं देंगे ! करुणा—परन्तु कैसी

निर्मम करुणा है यह! मेरी हत्या ये अवश्य करेंगे। किसी प्रकार भी नहीं रुक सकते।

बेचारी मेरी! अभागिनी बेटी! पिता के आदर से तुम घिरी हुई थीं। पिता से एक चुम्बन पाकर तुम तृप्त हो जाती थीं। जब तुम्हारे केश के गुच्छों को लेकर मैं आदर से मरोड़ा करता था, तो तुम्हारे नरम और लाल होठों के भीतर से हँसी का फ़व्वारा निकल पड़ता था। आनन्द की हँसी सारे गृह में एक संगीत की मूर्च्छना भर देती थी। उसके बाद रात को सोने के पहले अपने पिता के साथ तुम हाथ जोड़कर बैठ जाती थीं। तुम्हारा वन्दना-गान सारे दिन के परिश्रम और श्रांति को हलका कर देता था। अहा, तुम्हारी आराधना कैसी आवेगपूर्ण थी! ऐसा सुख का साम्राज्य मेरा! हाय! आज वह सब स्वप्न में परिणत हो गया। हाय, प्यारी बेटी! उस प्रकार तुम्हें छाती से लगाकर कौन तुम्हारे मुख को असंख्य चुम्बनों से भर देगा?—उस तरह कौन तुम्हारा आदर करेगा? सबके छोटे-छोटे बच्चे अपने-अपने पिता की स्नेह-पूर्ण गोद में बैठकर किसी मेले और तमाशे में हँसते हुए जायँगे, उस समय तुम्हारी आँखों में वेदना के आँसू डबडबायँगे—एक हृदय-भेदी वेदना तुम्हारे सुन्दर मुख

को म्लान कर देगी। व्यथित आँखें इधर-उधर अर्थहीन दृष्टि दौड़ायँगी। नव वर्षारंभ और अपने जन्म-दिन तुम कोई उपहार न पाओगी, किसी का आदर तुम्हारे हृदय का स्पर्श न करेगा। हाय री मेरी अभागिनी कन्या, तुम्हारे फूल के समान प्राण को क्या कोई भी तृप्त न करेगा? पितृहीन अनाथिनी मेरी!

यदि वे जूरी एक बार मेरी को देख लेते, तो शायद वह मृत्यु दण्ड देने के पहले उन्हे उसका भी खयाल होता। उसके म्लान नेत्रों की ओर देखकर उनका कठोर चित्त अवश्य चंचल हो जाता, इसमें कोई संदेह नही है—नहीं, कोई संदेह नहीं है! मेरी के लिए मेरा प्राण भी शायद बच जाता।

मेरी! जब वह बड़ी होगी, जब होश सम्हालेगी, सब बाते समझने लगेगी, तब मै कहाँ रहूँगा? उस समय तो मेरा नाम पेरिस की कलंक-स्मृति में लिखा होगा। मेरा नाम सुनकर क्या उसका प्राण काँप न उठेगा? मेरा नाम सुनते ही लज्जा से उसका अन्तःकरण फटने लगेगा। लोगों की घृणा उसको भी हमेशा जलाती रहेगी। मेरी! मेरी प्यारी कन्या मेरी! पिता के नाम पर सहानुभूति के

दो बूँद आँसू क्या तुम न डालोगी—अथवा घृणा की आग तुम मेरे नाम पर बरसाओगी ? नहीं, नहीं, मेरी ! तुम दो बूँद आँसू से मेरा तर्पण करना, मैं तृप्त हो जाऊँगा—केवल दो बूँद आँसू ! हाय भगवान् , ऐसा कौन-सा अपराध मैंने किया है, ऐसा कौन-सा महापाप मैंने किया है, कि समाज इस प्रकार निर्मम और निष्ठुर भाव से मुझे पीस डालना चाहता है ?

आज का सूर्य जब अस्त हो जायगा, तब मैं कहाँ रहूँगा ! इस पृथ्वी का सारा अस्तित्व मेरे लिए उस समय लोप हो जायगा। आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। क्या यह सच है—अथवा यह स्वप्न है ?

बाहर वह काहेका कोलाहल हो रहा है ? शायद मेरी मृत्यु देखने के लिए लोग दौडे आ रहे हैं। कुतूहली दर्शक, स्पर्धित प्रहरी, सज्जित आचार्य—मुझे देखने के लिए सब-का आग्रह एकसाथ जग उठा है। मृत्यु ! तुम सचमुच आज मुझे ग्रहण करोगी ? मुझको ?—जो मैं इस समय बैठा हुआ हूँ, साँस ले रहा हूँ, बातें सुन रहा हूँ, वायु का स्पर्श अनुभव कर रहा हूँ, वही मैं ! मर जाऊँगा ?
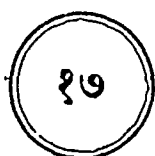
ये बातें क्या मैं नहीं जानता ? हाँ, जानता हूँ ! प्लेस-ग्रीभ के पास से जा रहा था—वह बहुत दिनों की बात है। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। अचानक मेरी गाड़ी रुक गई !

रास्ते पर हजारों की भीड़ इकट्ठी थी ! गाड़ी में से मैंने सिर निकालकर देखा, जवान-बूढ़ों से सारा रास्ता खचाखच भरा है ! चारों ओर अनगिनती खोपड़ियाँ नज़र आती थीं। दीवारों पर, छत पर, पेड़ों की डालियों पर—कोई भी जगह ख़ाली न थी। दूर पर फाँसी का तख्ता भी नज़र आता था। फाँसी का सब सामान तैयार था।

आज भी वही दिन है ! परन्तु आज मैं दर्शक नहीं हूँ। आज लोगों की भीड़ मुझे देखने को इकट्ठी हुई है ! वैसी ही भीड़ जमेगी।

केवल एक डोरी को अवलम्बन बनाऊँगा—साथ ही पलक

मारते-मारते एक अतल-स्पर्श अंधकार के भीतर घुस जाऊँगा—विराट अंधकार, उसके बाद ?—

एक पत्थर भी यदि मिल जाता तो अपने सिर को यहीं फोड़ लेता !

माफ़ी ! अरे मुझे माफ़ी दे दो, मुझे क्षमा करो !—शायद माफ़ी मिल भी जाय ! राजा को दया आ जाय तो—शायद माफ़ी की ख़बर लेकर दूत आता होगा ! आओ दूत ! जल्दी आओ ! यह सारा अंधकार अचानक ग़ायब हो जायगा। —एक तीव्र दीप्त मुक्त-प्रकाश के राज्य में मैं प्रवेश करूँगा ! जय के उल्लास से मेरा सारा मन प्रफुल्ल हो जायगा।

मुझे प्राणों की भिक्षा दे दो ! स्नेह और ममता में भरी हुई यह सुन्दर पृथ्वी, मेरा प्राण इसे छोड़ना नहीं चाहता !' मेरी रक्षा करो। गर्म लोहे से मेरे शरीर पर छाप लगा दो, मुझे कहीं जाने मत दो—बीस वर्ष, पचीस वर्ष तक मुझे जेल में बन्द कर रक्खो। केवल इस आस्मान, हवा और सूर्य के प्रकाश से मुझे वंचित मत करो। क़ैदी—वह भी चलता है, सोचता है, बातें करता है, वह भी सुखी है। केवल इस प्राण को न लो, भीख दे दो। बस, और कुछ नहीं चाहता।

आचार्य लौट आये। सफ़ेद बाल, नम्र प्रकृति और मीठी-मीठी बातें! देखने से श्रद्धा होती है।

आज सवेरे भी मैंने उन्हें क़ैदियों में ज्ञान वितरण करते देखा है। परन्तु उससे मेरा क्या लाभ? उनकी बातों में मेरा जी नहीं लगता। पानी जैसे काँच पर से फिसल जाता है, उनकी बातें भी मेरे मन से उसी प्रकार फिसल जाती थीं।

फिर भी उनको देखकर कुछ धीरज मिला। चारों ओर के इस वीभत्स दृश्य के भीतर उनमें कुछ कोमलता मालूम पड़ी।

हम दोनों बैठ गये—वह कुर्सी पर और मैं अपनी जीर्ण शय्या पर।

उन्होंने कहा,—"भाई !"

उनके संबोधन ने मेरे प्राण को शीतल कर दिया।

उन्होंने पूछा—"क्या ईश्वर पर तुम्हे विश्वास है ?"

मैंने कहा, "है।"

"यह उदार कैथलिक धर्म—क्या इस पर तुम्हारी श्रद्धा है ?"

मैंने उत्तर दिया,—"अवश्य।"

"तो सुनो," आचार्य कहने लगे। क्या कहने लगे, यह मुझे याद नहीं, कब तक कहते रहे, यह भी मैं नहीं जानता। अकस्मात् उन्होंने कहा, 'क्या ?' मैं दूसरी ओर देख रहा था—चौंक उठा। मैं उठ खडा हुआ, और बोला, "कृपया मुझे एकांत में रहने दीजिए। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"तो अब मै कब आऊँ कहो ?"

"मैं कहला भेजूँगा।"

वह उठ खड़े हुए, मृदु कण्ठ से उन्होंने उच्चारण किया "नास्तिक !"

नास्तिक !—नहीं, चाहे मैं कितना ही नीच क्यों न होऊँ परन्तु नास्तिक नहीं हूँ। भगवान जानते हैं, उनके प्रति मेरा विश्वास कितना गम्भीर है। परन्तु यह आचार्य नई बात

क्या सुनायगा ! मेरी दुःखी आत्मा को तृप्त करने की क्षमता इसमें कहाँ है ? इसकी सामर्थ्य ही कितनी है ? तनख्वाह लेकर दो-चार रटे हुए शब्दों के उच्चारण से कहीं किसी को शान्ति मिल सकती है ?

खूनी और डाकुओं के सामने रटे हुए वाक्यों को बक जाना जिसका पेशा है, क्षुब्ध आत्मा को शान्त करने की चेष्टा उसके लिए धृष्टता नहीं तो क्या है ! भगवान के नाम पर यह कैसी धोखेबाजी है ? विधाता के नाम पर यह कैसा परिहास है ? फिर भी राज-धर्म-द्वारा अनुमोदित होकर यह प्रथा कितने दिनों से प्रचलित हो रही है ? अफसोस !!

परन्तु यह बूढा आचार्य ! इसका भी दोष क्या है ? इसकी शिक्षा ही क्या है—ज्ञान भी कितना-सा है ? तुच्छ इने गिने रुपयों के लोभ में वह यह काम कर रहा है ! यही इसकी जीविका का अवलम्बन है। नहीं तो यह पेट कैसे भरेगा ? मुझे इस प्रकार की अश्रद्धा दिखानी न चाहिए ! परन्तु उपाय भी क्या है ? मेरी साँस के स्पर्श से चारों दिशायें जली जा रहीं है। मुख से विष निकल रहा है। मैं क्या करूँ भवितव्य कठिन है।

पहरेदार मेरे लिए नाना प्रकार के भोजन ले आया।
यही मेरे इस जीवन में आखरी खाना होगा।

खूब तो खा चुका। ऐसी तुच्छ घृणा, ऐसी हीनता!
नहीं, यह मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा।
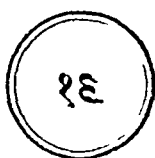
सिर पर टोपी ओढ़े एक आदमी अकस्मात् आकर खड़ा हो गया। कुछ व्यस्त भाव, किसी ओर भी लक्ष्य नहीं है। हाथ में गज का फीता और बग़ल में काग़ज़ों का बंडल। आते ही वह दीवार नापने लगा 'अच्छा पाँच फुट। यहाँ बदलना पड़ेगा' इत्यादि बातें वह एक पहरेदार से करने लगा। और भी न जाने क्या-क्या बकने लगा!

पहरेवाले के मुँह से सुना, वह एक ठेकेदार है! जेल-खाने का नया संस्कार होगा, वह इसी का नाप ले रहा है!

काम खतम करके उसने मुझसे कहा,—"आपको क्या आज फाँसी होगी?"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया! वह एकटक मेरी ओर देखता रहा।

उसने कहा—"छ महीने के बाद इस जेल को पहचा-नना मुश्किल हो जायगा! सब रद्दोबदल हो जायगा, तब देखने में बहुत सुन्दर हो जायगा।"

अर्थात् उसके कहने का सारांश यह था—"मैं बड़ा ही अभागा हूँ कि नई जेल देखना मेरे भाग्य में लिखा नहीं है—।"

उसके मुख पर एक सूखी हँसी भी दिखाई दी। पह-रेवाले ने उससे कहा,—"यहाँ खड़े होने का हुक्म नहीं है! आपका काम हो गया हो तो बाहर चलिए!"

वह चला गया और मैं—जिस पत्थर की दीवार को वह फ़ीते से नाप रहा था, उसी पत्थर की दीवार की भांति निःशब्द बैठा रहा।

इस समय एक और मजेदार बात हुई।

पहरा बदला। नया पहरेवाला आया। उसका चेहरा भयानक, स्वर तीव्र, मानों यमदूत ही हो।

पहरेवाले ने कहा, "क्योंजी तुम्हारे मन में कुछ दया-माया भी है या नहीं?"

मैंने कहा "नहीं।"

मेरे स्वर में एक तीक्ष्णता थी!—फिर भी वह हटनेर

वाला थोड़े ही था ! उसने कहा, "एक बात कहता हूँ, सुनो !"

मैंने कहा, "मैं अधिक रसिकता सह नहीं सकता !"

उसने कहा, "मैं अत्यंत दुःखी आदमी हूँ भाई, बड़ा ही अभागा हूँ । यदि तुम मुझ पर कुछ कृपा करो तो सदा के लिए तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा ।"

सदा के लिए ! 'सदा' तो मेरा सूर्यास्त के पहले ही खतम हो जायगा । मैंने कहा, "क्या तुम पागल हो ? देखते नहीं, मैं मरने जा रहा हूँ । इस समय मै किसी का क्या कर सकता हूँ !"

फिर भी वह छोडनेवाला कब था—बोला, "अजी सुनो भी तो !" उसके बाद चारों ओर देखकर धीरे-धीरे उसने कहा, "देखो भय्या, मेरा सारा सुख तुम्हारे ही हाथों में समझ लो । बडा ही ग़रीब हूँ मैं—यह काम बड़ी मेहनत का है—और तनख्वाह भी कम है,—उस पर अपने पास एक घोडा भी रखना पडता है ! नौकरी में सुख तो ऐसा ही है । इसीलिए भाई साहब, कभी-कभी मैं लाटरी का टिकट ख़रीद लेता हूँ ! आख़िर जीवन में कुछ करना तो चाहिए न ! परन्तु देखो न, सात-आठ वर्ष में लाटरी के टिकटों

में इतना रुपया ख़र्च कर डाला, परंतु एक पैसा भी लाभ न हुआ! अगर ७६ नंबर का टिकट ख़रीदता हूँ, तो ७७ नंबर वाला बाजी मार लेता है! और ७७ नंबर ख़रीदा तो ७६ या ७८ नंबरवाले की तक़दीर खुल जाती है! ख़ैर, तो अब मैंने क्या सोचा है, जानते हो?" कहकर उसने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा, "क्या सोचा है?".

उसने कहा, "शायद तुम्हारे द्वारा मेरी कुछ सुविधा हो जाय!"

मैंने ताज्जुब से उसकी ओर देखकर कहा,—"मेरे द्वारा सुविधा?"

उसने कहा, "हाँ, सब तुम्हारे ही हाथ में है! देखो मर जाने के बाद मनुष्य भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब देख-पाता है! और तुम तो कुछ घण्टे बाद मरोगे ही, इसीलिए तो कह रहा था कि क्या जानते हो, मुझे यदि उस समय ठीक-ठीक टिकट नंबर बतला दो तो उसी नबर का टिकट खरीदूँ! बस, रातोंरात बड़ा आदमी बन जाऊँ। इस नौकरी को छोड़ दूँ और खूब गुलछर्रे उड़ाऊ!—देखो भूत से मैं डरता नही। समझे न? कोई बाधा नहीं है। मेरा नाम

कार्सेपायिकर है। बी नंबर बारक, २६ नंबर का पलंग—याद रहेगा न ? तो आज ही रात को आकर बतला जाना। हाँ भय्या, यह उपकार तो तुम्हें करना ही पड़ेगा !"

मैं उसकी बात का उत्तर न देता, प्रवृत्ति भी नहीं थी। परन्तु एक उन्मत्त आशा मेरे मन में जग उठी—एक बार आखरी कोशिश ! मैंने कहा—"देखो धन चाहते हो ?"

"हाँ-हाँ, और कह क्या रहा हूँ ?"

मैंने कहा—'अच्छी बात है, मैं तुम्हें बहुत धन दूँगा, यदि एक काम कर सको।"

उसकी आँखें लोभ से चमक उठीं। उसने कहा "कहो अभी करूँगा—चाहे जैसा भी सख्त काम हो, पीछे नहीं हटूँगा।"

मैंने कहा, "केवल हम दोनों को आपस में पोशाक बदलनी होगी।—बस, और कुछ नहीं।"

"बस यही काम ! ओह, अभी करता हूँ।" यह कहकर वह अपने कोट के बटन खोलने लगा।

मैं उठ खड़ा हुआ। छाती धड़कने लगी। एक मिनिट का भी विलम्ब नहीं—नहीं तो सब नष्ट हो जायगा। आह भगवान—धन्य हो तुम। पल भर के अन्दर कल्पना-नेत्र के सामने मैंने देखा, मेरे सामने सब दरवाज़े खुले हुए हैं—कहीं

भी बाधा नहीं है—मुक्त आकाश के नीचे मैं खड़ा हूँ—सिर के ऊपर से पक्षियों का दल गीत गाते हुए उड़ रहा है। स्निग्ध शीतल वायु का स्पर्श भी मानों मैंने अनुभव किया। वह—एक जीवन ही नया था !

अकस्मात् पहरेवाला रुक गया कहा,—"ओह, समझ गया तुम्हारा मतलब, भागना चाहते हो ?"

गले को साफकर मैंने कहा, "और तुम्हे रुपया काहे का दूँगा ?'

वह फिर अपने कोट के बटन लगाने लगा। मेरे हृदय के भीतर एक बिजली दौड़ गई—सिर का खून गर्म हो गया।

उसने कहा, "नहीं, यह कैसे हो सकता है ? यह काम मैं नहीं कर सकता। यह झंझट है—मर कर ही तुम नम्बर बतला देना, इस प्रकार से भाग कर अरे राम राम !"

मैं बैठ गया। पैर काँप रहे थे। आशा नहीं है, कोई आशा नहीं है ! निराशा की गम्भीर वेदना में साँस तक रुकने लगी।

दोनों हाथों से मुँह ढककर मैं बैठा था—अतीत की सारी बातें याद आ रही थीं। स्वप्न की भाँति विचित्र और मधुर किशोरावस्था की बातें! दुर्भावनायें और दुश्चिन्ताओं का भारी काँटा, साथ ही वे बातें—मानों शुभ्र-सुन्दर फूलों का एक ढेर!

प्रफुल्ल मुख, निश्चिन्त हृदय, उत्साह से भरा हुआ जीवन—वे कैसे मधुर दिन थे! बगीचे में दौड़-धूप, साथियों का निर्मल प्रेम, वह एक सुख का साम्राज्य! उसके बाद किशोरावस्था के स्वप्न-राज्य में नवीन प्रकाश का उन्मेष! निराले कानन में वह मेरी तरुणी बाला!

बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बे केश, गौर वर्ण, गुलाबी अधर—अपूर्व रूपवती पेवा! बगीचे में हम दोनों खेलते थे—हँसी, गीत, गपशप!

कलह का भी अन्त न था। उसका स्वभाव था शान्त और मधुर! घोंसले से पक्षी चुराकर जब मैं धीरे-धीरे पेड़ पर से उतरता था, तब उसकी म्लान आँखें मेरी ओर देखती रहती थीं। उस दिन उसने कातर भाव से कहा, "क्यों तुम घोंसलों से छोटे-छोटे बच्चे चुराते हो? अहा! तुम बड़े निर्दय हो!"

मैंने ऐसे वीरत्व का कार्य किया! कहाँ तो मेरी प्रशंसा करनी चाहिए और यह कर रही है मेरा तिरस्कार! क्रोध से उस पक्षी को उसी के मुँह पर दे मारा। घर लौटकर जब उसकी माँ ने पूछा, "तेरे मुँह पर यह काहे का दाग़ है?" झट से उसने उत्तर दे दिया, "गिर पड़ी थी।"

उसके बाद कितने ही दिन वह मेरे साथ-साथ नदी किनारे घूमती रही है। गति कभी तो धीरे और कभी द्रुत! तीर पर से नदी की तरंगों को देखते थे—संध्या उतर आती थी, चारों ओर धीरे-धीरे अंधकार से अस्पष्ट होने लगता था। मृदु संगीत की भाँति नदी का जल पछाड़ खाकर किनारे पर आ गिरता था। हमारे कण्ठ का स्वर भी मृदु हो जाता था। कितनी ही बातें थी—देश की, विदेश की, प्रेम की, प्रणय की। कभी-कभी लज्जा से उसका मुख लाल

हो उठता था—नहीं, लाल नहीं, शायद गुलाबी !

वह गरमी के दिनों की बात है। शाम के वक्त बगीचे में बादाम के पेड़ के नीचे हम बैठे थे।

अचानक पेया के हाथ से रूमाल गिर पड़ा। मैंने उसे उठाकर उसके हाथ में दिया—स्पर्श से हाथ काँप उठा !

पेया कह उठी, "आओ जरा दौड़ें।" वह दौड़ी—केश के गुच्छे झालरों की भाँति झूल रहे थे, नाच रहे थे—गर्दन पर रंग कुछ अजब लाल था ! लाल बादलों पर मानों बिजली की एक रेखा थी !

एक कुँए के पास बैठ गई। ललाट पर मोती की भाँति पसीने की बूँदें ! मैं उसकी बगल में आकर बैठा। वह हाँफ रही थी। साँस कुछ रुक रहा था। मैंने उसकी ओर देखा।

पेया ने कहा, "कुछ पढ़ो ! अभी उजेला है।—तुम्हारे पास किताब हो तो निकालो, जेब में होगी ?"

मेरी जेब में एक उपन्यास था। मैंने उसे निकाला। मेरे कंधे पर सिर रखकर वह उसे पढ़ने लगी। पढ़ने-लिखने में वह बहुत तेज़ थी, उसकी बुद्धि भी अत्यन्त तीव्र थी।

कुछ देर पढने के बाद उसने मेरी ओर देखकर पूछा, "तुम सुन भी रहे हो या नहीं ?" सचमुच मैं केवल उसकी ओर देख रहा था—सुनने की फुर्सत ही कहाँ थी !

उसके सिर उठाते ही हम दोनों का केशाग्र मिल गया ! उसकी साँस का स्पर्श मैंने अपने गालों पर किया। साथ ही हम दोनों के ओठ भी मिल गये।

उसके बाद फिर जब पुस्तक को खोला, उस समय आसमान पर तारिकाओं का दल हम दोनों को देखकर हँस रहा था।

घर लौटकर वह अपनी माँ से बोली, "माँ, आज हम दोनों बहुत दौडे हैं।" मुझ से कुछ कहा न गया। उन्होंने पूछा, "तुम चुप क्यों हो ?"

चुप क्यों हूँ ? आनन्द और हर्ष की धारा मेरे हृदय में बह रही थी। उस स्निग्ध-सुन्दर संध्या की बात इस जीवन में कभी भूल नहीं सकता।

यह जीवन—? हाय, अब कितनी देर को है ?

मालूम नहीं क्या वजा है। सिर के अन्दर चिंताओं की राशि कोलाहल कर रही थी।

अपराध का बात सोचते ही कॉंप उठता हूँ—परन्तु, इस अनुताप से अब क्या लाभ है!

सज़ा के पहले पश्चात्ताप का जो बोझ हृदय को भारी कर रहा था, वह अब कहाँ है? मृत्यु की बात को छोडकर और सोचने का अवसर भी कहाँ है? अतीत की बात सोचने पर भी फाँसी की रस्सी आँखों के सामने नाचती है। वह सुन्दर शैशव, वह मधुर किशोरावस्था—आह, आज इस तरह फाँसी के तख्ते पर लोट पडेंगे? अतीत और वर्तमान के बीच एक रक्त-सागर का व्यवधान रह गया। जो मेरी जीवनी पढ़ेगा, शायद घृणा से नाक-भौं सिकोढेगा।

परन्तु सचमुच ही क्या मैं ऐसा ही बुरा हूँ ? नहीं कभी नहीं।

कुछ ही घण्टों में सारी चिंताओं और भावनाओं का अंत हो जायगा फिर भी उन दिनों को बीते अभी बहुत समय नहीं हुआ, जब नदी के किनारे, पेड़ों की छाया में, उपर से झड़े हुए पत्तों को रौंदता हुआ मैं स्वच्छन्द घूमता था !

मेरे इस रुद्ध कमरे के पास ही अनेक घर अभी तरुण-तरुणियों के सुख-गुंजन और शिशुओं के उच्छ्वास से पूर्ण होंगे। आशा-निराशा और सुख-दुःख का भार लेकर अभी भी नर-नारी बाहर थेय पर चल रहे होंगे। फेरीवाला चिल्लाकर फेरी दे रहा होगा। किसी कुंज में युवक अपनी प्रियतमा को आलिंगन में आबद्धकर प्रगाढ़ प्रेम के साथ चुम्बन कर रहा होगा। जीवन का फव्वारा चारों ओर छूट रहा होगा। और मैं ?—

पुरानी बातें ही याद आती हैं। नौटरडम में घण्टा देखने आये थे। उस समय मैं बालक था। अंधकार में टेढ़ी-मेढ़ी असंख्य सीढ़ियों को पार करते-करते मेरे सिर में चक्कर आ गया था। ऊपर चढ़कर देखा, सारे पैरिस शहर को मानों किसी ने ग़लीचा बनाकर पैरों के तले बिछा दिया है।

उसके बाद घण्टे को देखा। कितना भारी घण्टा था। मैं शहर देखने में तन्मय था। उस ऊँचे मीनार पर से नीचे सड़क पर चलनेवाले लोग बिलकुल छोटे-छोटे खिलौने मालूम होते थे। यही सब मैं देख रहा था कि भीषण शब्द के साथ वह घन्टा बज उठा। आवाज से मीनार काँप उठा—मेरे हाथ भी काँप उठे। मैं जमीन पर बैठ गया। घण्टे की ध्वनि बन्द होने पर भी प्रति-ध्वनि उस वक्त तक गूँज रही थी!

आज भी ठीक वैसा ही मालूम हो रहा है। घंटा-ध्वनि तो नहीं है, परन्तु चारों ओर कोलाहल मच रहा है। एक अस्पष्ट शब्द की झंकार से कान भर रहा है। ललाट की नसें धक-धक कर रही हैं। छाया की भाँति अपने चारों ओर मैं देख रहा हूँ, असंख्य नर-नारी हर्ष और कोलाहल करते हुए चल-फिर रहे हैं। वह ध्वनि उन्हीं की उल्लास-ध्वनि है न?

भिला-होटल के ऊँचे गुम्बज की घड़ी भी दिखाई पड़ रही है। क्रेदी-प्रीझ के कठोर पत्थर की दीवारों की तरफ ही वह घड़ी देख रही है। कितने दिनों की पुरानी वह दीवार—वह पुरानी घड़ी इसकी प्यारी सखी मालूम होती है।

जिस दिन किसी का जीवन फाँसी की डोर पकड़कर अज्ञात लोक के विराट् अन्धकार में लटक पड़ता है, उस दिन क़ैदी-गृह के सब दरवाज़ों के सामने असंख्य पहरेदारों की कुतूहल-दृष्टि जम जाती है। अभागे मृत्यु-पथ के यात्री ही उस व्यग्र-दृष्टि के लक्ष्य होते हैं। उन लुब्ध दृष्टियों की आग में ही वह अपनी सारी कहानी ख़त्म कर देता है— और संध्या की झुरमुट में भी होटल की वह ज्वलन्त घड़ी चन्द्रमा की भाँति हँसती रहती है।

एक बजकर पन्द्रह मिनट!

मेरी इस समय की हालत! सिर में असहनीय यंत्रणा! किसी ने मानों सिर में आग लगा दी है! जब बैठता हूँ या उठ खड़ा होता हूँ तो मालूम होता है कि सिर के अंदर एक रुद्ध नदी का सोता कल-कल करता हुआ बह रहा है। मानों सिर के बांध को तोड़कर अभी बाहर निकल पड़ेगा।

एक आतंक से अंग में रोमांच हो रहा है। अंगुलि से कलम गिरना चाहती है। हाथ में बिजली की तरंग!

आँखों में आँसू डबडबा रहे हैं, मानों मैं धूमाच्छन्न कमरे में बैठा हूँ। शरीर के जोड़ों में एक दर्द! अब केवल

पौने तीन घंटे बाकी हैं—फिर तो बस हमेशा के लिए आराम मिल जायगा। वह एक तीव्र सुख होगा।

लोग कहते हैं—यंत्रणा! वह कुछ भी नहीं है—विज्ञान में ऐसा कौशल है कि मरते वक्त मुझे कुछ भी कष्ट न होगा! क्या सचमुच?

छः घण्टे का यह कष्ट! इससे क्या मृत्यु का कष्ट अधिक होगा? यह जो पल-पल बीत रहा है, मुझे ऐसा मालूम होता है कि वेदना की असंख्य सीढ़ियों को पार करता हुआ मैं मृत्यु की ओर दौड़ रहा हूँ। यह वेदना—यह यंत्रणा—असहनीय है।

फिर भी, यह कुछ नहीं है?

नस नस से खून मानों चू रहा है। छाती पर एक भारी पत्थर रख दिया गया है—ओह, साँस बन्द हो रही है।

कैसी यन्त्रणा, कौन समझेगा—और, समझायेगा भी कौन? फाँसी के बाद यदि वह धड़-हीन सिर आकर उस वेदना को समझा सकता, तो विज्ञान की सब तारीफ ताक पर धरी रह जाती।

आँखों को पलक मारने की भी फुर्सत न होगी—सब

शेष हो जायगा ! एक मुहूर्त के अन्दर इतना बड़ा जीवन !"
ये कुतूहली दर्शक, ये अनगिनती राज-सैनिक, ये भला उस
यन्त्रणा को क्या समझें ? वह भीषण डोर एक मिनट के
अन्दर गले को दाब देगी—शरीर का सारा रक्त स्तम्भित हो
कर स्तब्ध हो जायगा ! समुद्र की गति रुद्ध होने पर रोष
से वह जैसा फूलने लगता है, बाधा पाकर सारा अन्तर
बाहर निकलने के लिए एक विराट् द्वंद्व मचायगा । हाय
अभागे ! उस भीषण द्वंद्व में ही सारा खेल खत्म हो जायगा
भीतर के साथ बाहर का प्रबल संग्राम—ओह, कैसा भयंकर
होगा ?

राजा की बात भी बारबार याद आ जाती है । मन से
यह चिंता किसी प्रकार भी दूर नहीं होती । दोनों कानों में
मानो कोई कह रहा है, "राजा ? इस समय इसी शहर के
एक बड़े भारी महल में सजे सजाये कमरे के अन्दर वह
बैठे हैं । मेरी ही भाँति असंख्य पहरेदार उनके दरवाज़े पर
खड़े हुए पहरा दे रहे होंगे ।" फ़र्क़ क्या है ? वह प्रतिष्ठा के
उच्च आसन पर, और मैं बिलकुल नीचे, बस इतना ही
फ़र्क़ है । उसके जीवन का प्रति मुहूर्त कैसा गरिमा-पूर्ण
महिमा-मण्डित, यश और उल्लास से भरा पूरा है । चारों

और प्रेम, भक्ति, श्रद्धा का निर्झर स्रर है ? उनके सामने तीव्र स्वर शांत हो जाता है, दर्पित मुण्ड नीचा हो जाता है। उनकी आँखों के सामने स्वर्ण और रौप्य की सामग्री चकाचौंध लगा देती है। सभासद्-वेष्टित राज-सिंहासन पर बैठकर वह आज्ञा दे रहे हैं—ससंभ्रम लोग उसका पालन कर रहे हैं। कभी शिकार, कभी व्यसन, कभी नृत्य और कभी गीत ! केवल मुँह से बात निकालने भर की देरी है कि असंख्य लोग विलास की सामग्री एकत्र करने के लिए तन्मय हो उठें !

राजा ! वह भी मेरी ही भाँति खून और माँस का बना हुआ जीव है—क्षुद्र मनुष्य, यह राजा ! फिर भी उसकी लेखनी के एक इशारे पर मेरी फाँसी की रस्सी रुक सकती है ! जीवन, स्वाधीनता, ऐश्वर्य, गृह—सारे सुखों को पल भर के अन्दर प्राप्त कर सकता हूँ—और यह भी सुना है कि "हमारे राजा दयालु हैं," मगर फिर भी मेरी जान को बचाना उनकी दया का दुरुपयोग होगा ! हाय रे, दया की परिभाषा !!

तब आओ साहस ! मृत्यु के डर को भगा ! काहे का डर ? काहे का आतंक ? आओ मृत्यु, मै हँसते-हँसते तुम्हारा स्वागत करूँ—खुशी से तुम्हे आलिगन करूँ । आओ तुम चाहे मित्र हो चाहे शत्रु, बस आजाओ !

आँखों को बन्द करते ही देखूँगा, उज्वल प्रकाश चारों ओर खिल रहा है । मेरी आत्मा उस प्रकाश के हौज़ में स्नान करने को बढ रही है ! सिर से ऊपर उल्लास से भरा हुआ अनन्त आकाश और तारे मानों उस शुभ्र प्रकाश के शरीर पर काले तिल ही हों ! मखमल की भाँति कोमल आकाश पर मानों हीरे के टुकडे बिखरे हुए हैं । उस समय वे ऐसे न रहेंगे !

या शायद, अभागा मैं यह देखूँगा कि उस विराट

अंधकार में मेरा सिर-हीन धड़ पड़ा हुआ है और कब्र के चारों ओर भूतप्रेतों का उपद्रव मचा हुआ है। वह एक फाँसी की हवा से संसार के एक कोने का परदा फट गया है। दानवों का दल बड़े समारोह के साथ उसमें घुस रहा है। चारों ओर कंकाल का पहाड़ लगा हुआ है, नीचे खून की नदी बह रही है। सिर के ऊपर आसमान में भी अंधेरा है। तारे आग के परिंदे बनकर इधर-उधर उड़ रहे हैं।

मेरे पहले जिन्होंने फाँसी के तख्ते पर जान दी है, वे मेरा इन्तज़ार कर रहे हैं, उनकी छाया मैं अभी भी देख रहा हूँ। रक्त-हीन शीर्ण देह, धँसी हुई आँखें, सूखा हुआ मुँह—क्या ही भयानक है। प्रकाश और अन्धकार के बीच खड़े होकर वे धीरे-धीरे कुछ कह रहे हैं। उनके मुख पर हँसी का नाम तक भी नहीं है। है केवल एक आतंक—एक अधीर उद्वेग! कहीं कुछ नजर नहीं आता। नीला होटल की वह निर्मम घड़ी मेरी ओर देखकर अट्टहास करती हुई मुझे अन्तिम समय की याद दिला रही है। संसार में कुछ भी नहीं है—रत्ती भर करुणा तक नहीं!

इसी तरह की बातें हृदय के भीतर द्वन्द्व मचा रही हैं। एक मिनट को भी नहीं छोड़तीं।

हाय, है क्या यह मृत्यु ? कौन है यह ? आत्मा के साथ इसका ऐसा विरोध क्यों है ? एक आघात से वह जब देह को धूल पर लिटा देती है—तब मन की यह चेतना, यह अनुभूति; यह प्रेम, स्नेह, दया यह सर्वव्यापी चित्र इन सबको वह कहाँ उड़ा देती है ? पृथ्वी—कठोर पृथ्वी को क्या इतनी-सी भी ममता नहीं है ? क्या इसमें वह शक्ति नहीं है कि मृत्यु को जय कर अपने हाथ से बनाये हुए जीवों की रक्षा करे ? भगवान् तुम्हारी यह सृष्टि लीला कैसी विचित्र है ! कैसा निष्ठुर है यह रहस्य ! कैसा निर्मम खेल है यह !

एक बार निद्रा देवी की आराधना करने के लिए बिस्तर पर लेट गया था।

सब खून मानों सिर के ऊपर आकर जम गया। जीवन में यही मेरी अन्तिम निद्रा होगी!

स्वप्न देखा!

स्तब्ध गंभीर रात! दो मित्रों के साथ बैठक में बैठा था। बगलवाले कमरे में स्त्री सो रही है—मेरी उसकी छाती से सटकर पड़ी हुई है!

बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहा था—कोई जाग न जाय, डर न जाय। अचानक एक शब्द, चौंक पड़ा! देखने के लिए उठा। अवश्य ही चोर आये हैं!

चारों ओर ढूँढ डाला। कोई नहीं है–किसी का चिन्ह तक नहीं !

चिमनी के पीछे वह क्या है ! कौन ?

एक नारी—रूखे बाल मुँह के चारों ओर बिखरे हुए–मुख पर एक कठिन भाव ! आँखें उसकी बन्द थीं ! मैंने पूछा "तू कौन है ?"

उसने कुछ जबाब न दिया। हम लोगों ने कहा, "जल्दी बतला तू कौन है ?" फिर भी चुप ! आँखें भी वैसे ही बंद ! मित्र ने कहा, "उसके मुँह पर रोशनी डालो।" मैंने बत्ती उठाकर उसके मुँह की ओर की। फिर भी चुप ! मैंने कहा बात क्यों नहीं करती ?" फिर भी अचंचला ! हम लोग परेशान ! राम कैसी आफ़त है यह !

मित्र ने कहा, "रोशनी को और पास लाओ।" मैं बत्ती को बिलकुल आँखों के पास ले गया उसने आखें खोल दीं। ओह, कैसी तीव्र थी उसकी दृष्टि ! मैंने आँखें बन्द कर लीं। साथ ही हाथ में कुछ जलन हुई। आँखें खोलकर देखा तो जेलखाना। मेरी शय्या के सामने आचार्य खड़े हैं !

मैंने पूछा "क्या मैं बहुत देर तक सोया हूँ ?" उन्होंने कहा, " हाँ, एक घण्टा सोये हो। तुम्हारी कन्या को मैं

लाया हूँ, मेरी को। देखोगे नहीं? तुम्हारे जगाने की कोशिश उन्होंने की थी। जब तुम नहीं जगे, तब मुझे बुलाया है। तुम्हारी कन्या मेरी—"

मैं चिल्ला उठा, "मेरी! मेरी लड़की मेरी! कहाँ है वह? जल्दी बतलाइए! लाइए, उसे मेरी गोदी में दीजिए, मैं उसे ज़रा छाती से लगा लूँ।"

मेरी ! उसका रंग गुलाब के फूल जैसा, अंगूर की तरह नरम उसके ओठ—अहा, मेरी प्यारी मेरी !

काली पोशाक में वह कैसी सुन्दर मालूम हो रही थी। मैंने उसे अपनी गोद में उठा लिया, कपोलों पर हजारों बार चुम्बन किया।

विस्मय के साथ वह मेरी ओर देख रही थी। आँखों में वह कैसा भाव ! मानों अत्यन्त कातर है ! बीच-बीच में वह कमरे के एक कोने में खडी हुई आया की ओर देख रही थी। आया रो रही थी।

मेरी को पुचकारकर, मैंने उसे अपनी छाती पर दबा-लिया। रुद्ध स्वर से मैंने कहा, "मेरी, मेरी प्यारी मेरी !"

अत्यन्त मृदु भाव से मुझे एक धक्का देकर उसने

अपना मुँह हटा लिया, और कहा, 'आह ! आप छोड़िए मुझे !"

'आप !'

करीब एक साल बाद यह साक्षात् ! इस एक वर्ष में मेरी मुझको भूल गई। मेरी बातें, मेरा सुख, मेरा आदर भाव सब उसके मन से कहाँ उड़ गये ! परन्तु इसमें उसका अपराध क्या ?

मेरी ये मूछें, सिर में जटा के से बाल, शीर्ण मुख, क़ैदी की पोशाक़, रुद्ध कण्ठ-स्वर—भला, वह मुझे कैसे पहचानेगी ?

जो मुझे याद रक्खेगी, यह सोचकर मैं कुछ शान्ति पा रहा था, वह भी मुझे भूल बैठी है ! हाय, रे, मेरे भाग्य !!

आज मैं उसका 'बाबू' नहीं हूँ। अपनी बेटी के मुँह से पितृ-सम्बोधन, फूल की पँखडी की भाँति उसके हास्यमय मुख में वह मधुर सम्बोधन 'बाबू'—अहा, आज मैं उससे भी वंचित हूँ !

कैसा दारुण अभिशाप है !

इस समय जीवन के इस शेष-मुहूर्त्त में एक बार, केवल एक बार उस संबोधन के बदले, अपनी बेटी के मुँह से वह आह्वान यदि एक बार पल भर के लिए भी सुन लूँ, तो

चालीस वर्ष का वह सुदीर्घ जीवन मैं हँसते हुए विसर्जन कर दूँ।

"मेरी!—" उसके दोनों हाथों को अपने हाथों से दबाकर मैंने कहा, "मेरी प्यारी बेटी मेरी, क्या मुझे नहीं पहचानती?"

अपनी तेज़ आँखों को उठाकर कुछ गुस्से से उसने कहा, "नहीं!"

मैंने कहा, "देखो, अच्छी तरह देखो, मैं कौन हूँ!!'

उसने कहा, "कौन हैं आप, मैं क्या जानूँ। होंगे कोई भले आदमी!" कैसा अम्लान था उसका कण्ठ-स्वर।

हाय, संसार में जिसकी ज़रासी हँसी देखने के लिए मैं सब-कुछ कर सकता हूँ, उसी के मुँह से यह कैसी बात! उसकी आँखों में यह कैसी दृष्टि!

मैंने पूछा, "मेरी, तुम्हारा बाप है?"

उसने कहा, "है! क्यों?"

मैंने कहा, "कहाँ है वह?"

मेरी ओर देख कर उसने कहा, "वह; कहिए!"

हाय, मेरी प्यारी बेटी! हाय रे, दीर्ण पितृ-हृदय की व्याकुलता, मैंने फिर पूछा, "कहाँ है वह?"

मेरी की आँखें सजल हो गईं। उसने रुद्ध कण्ठ से कहा, "स्वर्ग में !"

मैंने कहा "स्वर्ग में ! जानती हो मेरी, वह स्वर्ग कहाँ है ? उस स्वर्ग का अर्थ क्या है ?"

मेरी की आँखों से आँसू टपक रहे थे, मैंने उसे पुचकारा।

मैंने कहा, "मेरी, एक बार ईश्वर का स्मरण करो।"

उसने कहा, "नहीं, महाशय, दिन-दोपहर में बिना काम उनको विरक्त नहीं करना चाहिए। ठीक सन्ध्या के समय मैं प्रार्थना करूँगी।"

मेरा सारा चित्त व्याकुल हो रहा था ! यह लड़की—यह मेरी—मेरी ही कन्या है ! हाय, आज यह मेरी नहीं रही—मैं आज इसके पास से बहुत दूर हट गया हूँ। नहीं-नहीं,—जैसे भी हो, इसे समझाऊँगा कि मैं ही उसका 'बाबू' हूँ। स्वर्ग में नहीं, नरक में नहीं, उसी के सामने, इसी जेल के अन्दर। यह मैं फाँसी के लिए तैयार बैठा हूँ।

मैंने कहा, "मेरी, तुम पहचानती नहीं, मैं तुम्हारा पिता हूँ।"

मानों कुछ डाटकर उसने उत्तर दिया "नहीं—"

मैंने कहा "प्यारी बेटी, क्यों मुझे भूल गई ! देखो,

अच्छी तरह देखो, वह घर पर गुलाब की क्यारियों के पास बैठकर मैं तुम्हे कहानियाँ सुनाता था—परी की कहानी—सियार की कहानी—"

मेरी के मुख को फिर मैंने छाती से लगा लिया।

मेरी ने कहा "आह! छोड दो, लगती है।"

मैंने उसको अपने घुटने पर बैठाकर पूछा, "पढ़ सकती हो?"

"हाँ!"

एक अख़बार खोलकर मैंने उसके सामने रक्खा। वह पढ़ने लगी, "प्राण दण्ड का मुलज़िम—"

अकस्मात् मैंने काग़ज़ को छीन लिया। अख़बार वह अपने साथ लाई थी! अख़बारवालों ने मेरी फाँसी की सूचना बड़े-बड़े अक्षरों में छापी थी, जिससे किसी की नज़र उस पर से चूके नहीं और इतना बड़ा समारोह देखने के लिए दर्शकों का दल टूट पड़े।

अपने मन का भाव मैं स्याही से लिखकर समझाने में असमर्थ हूँ। मेरी यह सूक्ष्म मूर्ति देखकर, भय से मेरी रोने लगी। उसने कहा, "लाओ, मेरा काग़ज़ लाओ, मै जहाज़ बनाऊँगी।"

आया के हाथ में अख़बार को लौटाकर मैंने कहा, "इसको लेती जाओ, और घर पर कहना ·····।" इसके आगे कुछ कह न सका। क्या सन्देश भेजूँ! खिड़की के पास एक कुर्सी पर बैठ गया। आँखों को अपने दोनों हाथों से ढक लिया!—सिर के भीतर रक्त का स्रोत भीषण रूप से नाच रहा था!

कहाँ है वे यमलोक के भयानक दूत? आने दो, अब क्या है! संसार में मेरा कोई नहीं है—जीने की अब इच्छा भी नहीं है। जिस साकल में मैं इस संसार के साथ बँधा हुआ था,।—वह साँकल टूट गई है! फिर अब यह माया-ममता क्यों?

आचार्य के हृदय में भी दया है, काराध्यक्ष भी पत्थर का आदमी नहीं है। आया जब मेरी को ले जाने लगी, तो उनकी आँखों से भी आँसू की बूंदें टपक पड़ीं।

शेष—अब सब शेष! केवल साहस और बल! पथ पर वियुक्त जनता—फाँसी के तख्ते के निकट बढ़ना—उसके बाद कहाँ रहेगा संसार—और, कहाँ रहूँगा मैं?

कोई हँसेगा, कोई आनन्द से ताली बजायगा, कोई चिल्लायगा! फिर भी कौन जानता है, इन दर्शकों में भी कितने ही आदमी एक दिन मेरे ही पथ के पथिक बन सकते हैं! आज तो ये मेरा तमाशा देखने आये हैं, एक दिन इनमें से कोई न कोई या कितने ही दूसरों को तमाशा दिखाने जायेंगे—!

'मेरी प्यारी मेरी !'

नहीं, वह तो आया के साथ चली गई ! गाड़ी की खिड़की में से वह इस दर्शकों की भारी भीड़ को जरूर देखेगी। समझेगी, कुछ तमाशा होगा। इस "भले, आदमी" की उसे याद भी न रहेगी। वह नहीं जानेगी कि उसके इस "भले आदमी" को देखने के लिए ही इस तमाशे का बन्दोबस्त किया गया है। और वह 'भला आदमी' दूसरा कोई नहीं है उसी का वह 'स्वर्गवासी बाबू' है !

उसके लिए मैं लिख जाऊँगा। एक दिन वह पढ़कर समझेगी। पन्द्रह वर्ष बाद तब वह आज के इस मुहूर्त की बात सोचकर रोवेगी।

हाँ, अपनी सारी कहानी उसके लिए लिख जाऊँगा ! सारी बातें लिख जाऊँगा—मेरा इतिहास—क्यों आज देश की छाती पर रक्ताक्षर में मेरा नाम लिखा जा रहा है, यह सब उस कहानी में मैं लिखूँगा।

मिला-होटल के कमरे से—

मिला-होटल !..   ... मै अब यहाँ आ गया हूँ । वह स्थान—वह है मेरी इस खिडकी के नीचे। बहुत आदमी इकट्ठे हुए है। कोई चिल्ला रहा है, कोई सीटी बजा रहा है। कोई हँस रहा है।

लाल रग के उस खम्भे को देखकर छाती काँप रही है।

वे कौन आ रहे हैं ? शायद समय हो गया। अब विलंब नहीं है। सारी देह काँप रही है। छ. घण्टे से—छः महीने से जिस बात की चिंता लगातार कर रहा हूँ, वह मुहूर्त आ गया, परन्तु कितनी जल्दी !

एक छोटे कमरे में लाकर उन्होंने मुझे खडा कर

दिया। खिड़की के अन्दर से आस्मान नज़र आ रहा था।—चारों ओर कुआँ-सा है। मैं कुर्सी पर बैठ गया। कमरे में और भी तीन-चार आदमी थे। आचार्य भी थे। सहसा मेरे बालों में लोहे का ठंडा स्पर्श! कैंची का शब्द! बाल नीचे मेरे पैरों पर आ गिरे! आस-पास सब की कानाफूँसी! डाढी मूँड दी गई!

आँख उठाकर देखा, कागज और पेन्सिल लेकर एक आदमी प्रश्न कर रहा है। समझा, अखबारों का प्रतिनिधि है! कल के अखबार के लिए "मैटर" इकट्ठा कर रहा है अखबारवालों की चाँदी है—ख़बर जबरदस्त है।

दो पहरेदारों ने आकर मेरा हाथ पकडा। मैं आचार्य के पीछे-पीछे चला।

बाहर का दरवाजा खुल गया।

लोगों की भीड इकट्ठी थी। चारों ओर से आवाज़ आई वह, वह, वह है। सिपाही मेरे चारों ओर चल रहे हैं। राजा के योग्य सम्मान से मुझे ले जाया जा रहा है।—वाह-वाह, खूब!

किसी ने कहा, "नमस्कार महाशय!" किसी और ने आवाज कसी, "आदाब अर्ज है।"

एक स्त्री ने कहा, "हाय, बेचारा।"

एक आदमी ने कहा, "टोपी खोल डालो, सम्मान दिखाओ।"

मुझे हँसी आई—हाय, ये टोपी ही खोल रहे हैं, मुझे सिर खोल देना पड़ेगा।

आचार्य के हाथ से 'क्रॉस' † लेकर मैंने छाती से लगाया। आग्रह के साथ भक्ति-गद्‌गद् कण्ठ से मैंने कहा—"क्षमा करो भगवान्, तुम्हीं पाप-तारण हो—आर्त्तों के मित्र हो!"

नारियों की करुण समवेदना के स्वर कान में आये। मेरी तरुण अवस्था देखकर वे मेरे लिए दुःखी थीं।

सहसा मैं काँप उठा—सामने ही वह फाँसी का तख्ता!

टनन्-टनन् करके चार बज रहे हैं।

---

† ईसाइयों का धर्म-चिन्ह

सस्ता-मण्डल, अजमेर की प्रकाशित

पुस्तकें

१) भेजकर स्थाई ग्राहक बन जाँय और सब पुस्तकें पौने मूल्य में लें।

१—आत्म-कथा (दोनों खण्ड) २)
*२—क्या करें? (दोनों भाग) १॥=)
*३—जीवन-साहित्य (दोनों भाग) १)
४—सामाजिक कुरीतियाँ ॥≡)
५—शैतान की लकड़ी ॥=)
६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
७—अनीति की राह पर ॥)
८—दिव्य जीवन ।=)
९—स्त्री और पुरुष ॥)
१०—चीन की आवाज़ ।-)
११—अंधेरे में उजाला ।≡)
१२—विजयी बारडोली २)
१३—हाथ की कताई बुनाई ॥≡)
१४—खद्दर का संपत्ति शास्त्र ॥≡)
१५—तामिल वेद
१६—श्रीराम चरित्र १।)
१७—कर्म योग ।=)
१८—आत्मोपदेश ।)
१९—स्वामीजी का बलिदान (हिन्दू मुसल्मि समस्या) ।-)
२०—व्यावहारिक सभ्यता ।)॥
२१—कन्या शिक्षा ।)
२२—भारत के स्त्रीरत्न (दो भाग) १॥-)
२३—घरों की सफाई ।)
२४—महान् मातृत्व की ओर— ॥=)
२५—सीताजी की अग्नि परीक्षा ।-)
२६—समाज-विज्ञान १॥)
२७—यूरोप का इतिहास २)

२८—गोरो का प्रभुत्व ।||=)
२९—शिवाजी की योग्यता ।=)
३०—जब अंग्रेज नहीं आये थे— ।)
३१—अनोखा ! १।=)
३२—गंगा गोविन्दसिंह ||=)
३३—आश्रम हरिणी ।)
३४—कलवार की करतूत -)||।
⚘३५—ब्रह्मचर्य विज्ञान |||-)
⚘३६—तरंगित हृदय ||)
३७—हिन्दी-मराठी कोप २)
⚘३८—यथार्थ आदर्श जीवन ||-)
३९—हमारे जमाने की गुलामी ।)
४०—दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह १।) (दो भाग)
४१—जिन्दा लाश ||)
४२—दुखी दुनिया ||)
४३—नरमेध ! १||)
४४—जब अंग्रेज आये १।=)
४५—जीवन विकास १।)
४६—किसानो का बिगुल =)
४७—फाँसी ! ||)
४८—अनासक्तियोग (म० गांधी) =)
४९—स्वर्ण-विहान (नाटिका) ||)

क्या करें पहला भाग और जीवन-साहित्य पहला भाग तथा अन्य ⚘ इस चिन्ह वाली पुस्तकें स्टोक मे नही है। तैयार होने पर सूचना दी जायगी।

व्यवस्थापक